आयशा सिद्दीक़ा رضي الله عنها

ज्ञान और मार्गदर्शन का आदर्श

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ

आयशा सिद्दीक़ा رضي الله عنها

ज्ञान और मार्गदर्शन का आदर्श

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ

सी पी एस
हिन्दी संपादकीय टीम

Goodword Books

First published 2026
This booklet is copyright free
This booklet is an Hindi translation of Maulana Wahiduddin Khan's Urdu booklet entitled *Aisha Siddiqah*

Goodword Books
A-21, Sector 4, Noida-201301, Delhi NCR, India
Mob. +91 8588822672
info@goodwordbooks.com
www.goodwordbooks.com

CPS International
Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market, New Delhi-110 013, India
Mob. +91-9999944119
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

Center for Peace and Spirituality USA
391 Totten Pond Road, Suite 402,
Waltham MA 02451, USA
Mob. 617-960-7156
email: info@cpsusa.net

विषय सूची

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.)	5
हज़रत आयशा की श्रेष्ठता	8
शिक्षा और प्रशिक्षण	9
शख़्सियत का निर्माण	12
विवेकपूर्ण मार्गदर्शन	17
इस्लाह में तदरीज (धीरे-धीरे सुधार की प्रक्रिया)	20
रहस्य बनाए रखना	21
हज़रत आयशा के इस्तिनबात (गहरे अर्थ निकालने की समझ)	22
हज़रत आयशा के इस्तिदराकात (हदीसों की समझ में गलतियों का सुधार)	30
हदीसों का स्पष्टीकरण	32
निकाह की उम्र का मामला	39
हज़रत आयशा का निकाह	48
निकाह की गहरी बुद्धिमत्ता	50
सूरह नूर की रोशनी में	54
धर्म के नाम पर अधर्म	60
एक आदर्श नमूना	62

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.)

हज़रत आयशा (रज़ि.) हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) की बेटी थीं। उनका जन्म हिजरत (मक्का से मदीना की ओर पलायन) से 8 साल पहले मक्का में हुआ। 58 हिजरी में 66 साल की उम्र में उनका देहांत हुआ। हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के देहांत के बाद ख़ौला बिन्त हकीम ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) की ओर से हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) को निकाह का संदेश दिया। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने कहा कि इससे पहले मुतइम बिन अदी अपने बेटे ज़ुबैर के लिए आयशा के निकाह का संदेश दे चुके हैं। मैंने उसे मंज़ूर भी कर लिया है। और अल्लाह की क़सम, अबू बक्र ने कभी किसी वादे के खिलाफ़ नहीं किया: (*दलाइलुन्नुबुव्वह*, अल-बैहक़ी, खण्ड 2, पृष्ठ 411)।

इसके बाद हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ मुतइम के घर गए और उनसे मुलाक़ात की। उन्होंने पूछा, "आयशा का निकाह अपने बेटे से करने के बारे में आपका क्या विचार है?" मुतइम ने अपनी पत्नी से कहा, "इस बारे में तुम क्या कहती हो?" उनकी पत्नी ने हज़रत अबू बक्र से कहा, "आपसे रिश्ता करने में मुझे यह डर है कि कहीं मेरा लड़का साबी (बे-दीन) न हो जाए और अपने बाप-दादा का धर्म छोड़कर आपके धर्म (इस्लाम) में शामिल हो जाए।" फिर अबू बक्र ने दोबारा मुतइम बिन अदी से पूछा, "ऐ मुतइम! आप क्या कहते हैं?" मुतइम ने जवाब दिया, "मेरी पत्नी ने जो कुछ कहा, वह आपने सुन लिया।"

इस तरह मुतइम और उनकी पत्नी, दोनों ने रिश्ता करने से इनकार कर दिया। इसके बाद हज़रत अबू बक्र ने समझ लिया कि अब उस वादे की ज़िम्मेदारी उन पर नहीं रही। तब हज़रत अबू बक्र ने ख़ौला से कह दिया कि तुम्हारा संदेश

मुझे मंज़ूर है। इसके बाद तय समय पर रसूलुल्लाह (सल्ल०) हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के घर गए। वहाँ आपका निकाह हज़रत आयशा (रज़ि.) से हुआ, और महर पांच सौ दिरहम तय हुआ।

इस घटना से यह सीख मिलती है कि सामाजिक मामलों में यदि कभी कोई तय बात पूरी न हो सके या कोई रिश्ता टूट जाए, तो उससे निराश नहीं होना चाहिए। संभव है कि उसके पीछे कोई बड़ी भलाई छिपी हो। हज़रत आयशा (रज़ि.) का रिश्ता मक्का के एक सरदार के बेटे से तय हुआ था, लेकिन वह रिश्ता टूट गया। बाद में उन्हें इस्लाम के पैग़ंबर रसूलुल्लाह की पत्नी बनने का सम्मान प्राप्त हुआ।

हज़रत आयशा (रज़ि.) रसूलुल्लाह (सल्ल०) से उम्र में बहुत छोटी थीं। यही कारण है कि आपके देहांत के बाद वह लगभग 50 साल तक ज़िंदा रहीं। इस असमान अन्तर की शादी में दूरदर्शिता यह थी कि हज़रत आयशा बेहद ज़हीन होने के कारण चीज़ों को समझने (grasp) की बहुत ज़्यादा क्षमता रखती थीं। इस निकाह ने उन्हें अल्लाह की ओर से प्रदान की गई क्षमता को पूरी दुनिया के लिए लाभदायक बना दिया।

हज़रत आयशा (रज़ि.) लगभग दस साल तक रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथ रहीं। इस दौरान उन्होंने रात-दिन आपको देखा और आपकी सारी बातें सुनीं। इस तरह दीन का इल्म और इस्लाम की गहरी समझ का बहुत बड़ा ख़ज़ाना उनके मन में जमा हो गया। रसूलुल्लाह (सल्ल०) के देहांत के बाद उन्होंने इस पैग़म्बरी शिक्षा को उम्मत तक पहुँचाया। वह लगभग आधी सदी तक एक ज़िंदा टेप रिकॉर्डर की तरह बनी रहीं।

हाफ़िज़ इब्न हजर लिखते हैं कि हज़रत आयशा (रज़ि.) का जन्म हिजरत से लगभग आठ साल पहले हुआ। जब रसूलुल्लाह (सल्ल०) का देहांत हुआ, तब उनकी उम्र लगभग 18 साल थी। उन्होंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) की बहुत-सी बातें याद रखीं। बाद में लोगों ने उनसे दीन, व्यवहार और शिष्टाचार से संबंधित अनेक बातें सीखीं। कहा जाता है की दीन के निर्देशों का चौथाई

हिस्सा उन्ही से प्राप्त किया गया है। उनका देहांत अमीर मुआविया (रज़ि.) की खिलाफ़त के ज़माने में 58 हिजरी में हुई। (*सियर आलामुन नुबला*, इमाम ज़हबी, खण्ड 2, पृष्ठ 192)

हज़रत आयशा (रज़ि.) से रसूलुल्लाह (सल्ल०) के बहुत अधिक कथन बयान हुए हैं। लेकिन इसी के साथ उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) की हर बात को बहुत ध्यान से सुना। उन्होंने आपके हर काम को बहुत ध्यान से देखा और अल्लाह की दी हुई समझ से उसमें छिपी हिकमतों को समझा। उनकी बातें इस्लाम की हिकमत और गहरी मारिफ़त (बोद्ध) का ख़ज़ाना हैं। उदाहरण के तौर पर उन्होंने फ़रमाया कि जब भी रसूलुल्लाह (सल्ल०) को दो बातों में से एक को चुनना होता, तो आप हमेशा दोनों में से आसान बात को चुनते थे। उनके इस एक कथन में अनेक गहरे अर्थों का बहुत बड़ा ख़ज़ाना छिपा हुआ है।

हज़रत आयशा (रज़ि.) ने अपने आप को पूरी तरह इस्लाम के लिए समर्पित कर दिया था, इसी के साथ उन्होंने सादा जीवन और दुनियावी लालसाओं से दूरी को अपना जीवन-मार्ग बना लिया। बाद के समय में उनके पास बहुत-सा माल आता था, लेकिन वह सारा माल लोगों में बाँट देती थीं और खुद बहुत सादा जीवन बिताती थीं। एक बार हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) ने उनके पास एक लाख अस्सी हज़ार दिरहम भेजे। उन्होंने शाम तक सारे दिरहम दान कर दिए। उस दिन वह रोज़े से थीं और घर में रोटी और ज़ैतून के तेल के सिवा कोई दूसरी चीज़ नहीं थी। उनकी ख़ादिमा ने कहा कि अगर आप कुछ दिरहम बचाकर गोश्त मँगवा लेतीं तो अच्छा होता। उन्होंने फ़रमाया, "अगर तुमने पहले याद दिलाया होता, तो मैं मँगवा लेती।" (*अज़-ज़ुह्द*, हन्नाद बिन अस्सरी, असर संख्या 619)

सांसारिक मोह से दूरी और सादा ज़िंदगी ही गहरी समझ की कुंजी है। जो व्यक्ति अल्लाह की सही पहचान और इस्लाम की गहरी समझ पाना चाहता है, उसे दुनियावी सुख-सुविधाओं के मोह में पड़ने के बजाय उनसे ऊपर उठकर जीना होगा।

हज़रत आयशा की श्रेष्ठता

इस्लाम के इतिहास में पहली महिला (first lady) का स्थान आयशा बिन्त अबू बक्र को प्राप्त है। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) क़ुरआन की गहरी समझ रखती थीं। हदीस के इल्म में भी उनका बहुत ऊँचा स्थान था।

हज़रत आयशा के पिता अबू बक्र बिन अबू क़ुहाफ़ा थे और उनकी माता का नाम उम्मे रुमान बिन्त आमिर था। उनका जन्म मक्का में नुबुव्वत के पाँचवें साल हुआ। मौलाना सैयद सुलैमान नदवी ने इस बारे में अलग-अलग रिवायतों का अध्ययन करके बताया है कि उनकी जन्म-तिथि संभवतः हिजरत से 9 वर्ष पहले शव्वल, अर्थात जुलाई 614 ईस्वी है। (*सीरत-ए-आयशा*, सैयद सुलैमान नदवी, पृष्ठ 19)

हज़रत आयशा की याददाश्त (स्मरण-शक्ति) बहुत असाधारण थी। उन्हें अपने बचपन की भी ज़्यादातर बातें याद थीं। और उन्हें अरब के शायरों का कलाम इतना ज़्यादा याद था कि अक्सर मौकों पर वह कोई न कोई शेर पढ़ दिया करती थीं। नुबुव्वत के तेरहवें वर्ष रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने अपने परिवार को लेकर हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) के साथ मदीना की ओर हिजरत की। हज़रत आयशा भी अपने परिवार के साथ मक्का से मदीना आ गईं। याददाश्त के साथ-साथ उनमें बात को समझने की भी असाधारण क्षमता थी। हिजरत के समय उनकी उम्र केवल आठ साल थी। लेकिन इतनी कम उम्र में भी उनकी याददाश्त का यह हाल था कि उन्हें हिजरत-ए-नबवी की सभी घटनाएँ ही नहीं, बल्कि उनकी छोटी-छोटी बातें भी याद थीं। हिजरत की घटनाओं का जितना क्रमबद्ध और विस्तृत वर्णन उन्होंने सुरक्षित रखा, उतना किसी दूसरे सहाबी ने नहीं रखा। आयशा सिद्दीक़ा के बारे में रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया: 'आयशा की श्रेष्ठता दूसरी सभी औरतों पर वैसी ही है, जैसी सरीद (एक स्वादिष्ट व्यंजन) की श्रेष्ठता दूसरे सभी खानों पर हैं।' (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 3433)।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) का पहला निकाह मक्का में ख़दीजा बिन्त ख़ुवैलिद से हुआ, उस समय आपकी उम्र 25 साल थी। हिजरत से 3 साल पहले हज़रत ख़दीजा का देहांत हो गया। उसके बाद आपका दूसरा निकाह आयशा बिन्त अबू बक्र से हुआ। इस निकाह में संदेश पहुँचाने का काम ख़ौला बिन्त हकीम ने किया था। हदीस की किताबों से मालूम होता है कि हज़रत आयशा (रज़ि.) का निकाह रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथ मक्का में हुआ। उस समय उनकी उम्र 6 साल थी। उनकी रुख़्सती हिजरत के बाद मदीना में हुई। उस समय उनकी उम्र 9 साल हो चुकी थी। (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 24867)

हज़रत आयशा का निकाह उनके पिता अबू बक्र सिद्दीक़ ने स्वयं पढ़ाया। (*मुस्तद्रक अल-हाकिम*, हदीस संख्या 2704) रिवायतों के अनुसार, उनका महर पाँच सौ दिरहम था। (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1426) पुराने समय में अरब में शिक्षा का चलन नहीं था। बहुत कम लोग पढ़ना-लिखना जानते थे। इन थोड़े से लोगों में एक नाम अबू बक्र सिद्दीक़ का भी था। इसी पारिवारिक परंपरा के कारण हज़रत आयशा को भी पढ़ना-लिखना सीखने का अवसर मिला। इसलिए वह क़ुरआन देखकर पढ़ती थीं। कुछ रिवायतों के अनुसार, उन्हें लिखना भी आता था। इसलिए वह ख़त का जवाब लिखकर भी देती थीं। (*औरत: मेमारे इंसानियत*)

शिक्षा और प्रशिक्षण

हज़रत आयशा के बारे में बताया गया है कि वे इल्मी (ज्ञान के) दृष्टि से सहाबा के बीच एक ख़ास स्थान रखती थीं। कहा जाता है कि वे मुस्लिम महिलाओं में सबसे बड़ी फ़क़ीहा (इस्लामी क़ानून (फ़िक़्ह) की गहरी जानकार महिला) थीं और दीन व अदब (धर्म और शिष्टाचार) का सबसे अधिक ज्ञान रखती थीं: (*अल-आलाम*, अज़-ज़िरिकली, खण्ड 3, पृष्ठ 240)।

एक दूसरी रिवायत में ये शब्द आए हैं: "आयशा लोगों में सबसे बड़ी फ़क़ीहा, सबसे अधिक ज्ञान रखने वाली और आम लोगों में सबसे अच्छी राय (मशवरा देने) वाली महिला थीं।" (*मुस्तद्रक अल-हाकिम*, हदीस संख्या 6748)।

अबू मूसा अशअरी कहते हैं: हम, रसूलुल्लाह के साथियों को जब भी किसी मामले में कोई कठिनाई या संदेह होता, तो हम उसके बारे में आयशा (रज़ि.) से पूछते और उनके पास हमें उस विषय का ज्ञान मिल जाता। (*सुनन तिर्मिज़ी*, हदीस संख्या 3883)।

इस प्रकार की बातें हदीस और सीरत की किताबों में हज़रत आयशा के ज्ञान के बारे में कही गई हैं। उनसे एक महत्वपूर्ण बात मालूम होती है। और वह है इस्लाम में महिलाओं की शिक्षा का महत्व। हज़रत आयशा को यह ज्ञान जन्म से नहीं मिला था और न ही मिल सकता था। निश्चित रूप से उन्हें यह ज्ञान उस समय के इस्लामी समाज में प्राप्त हुआ था।

हज़रत आयशा के पिता अबू बक्र सिद्दीक़ इस्लाम से पहले के उन लगभग डेढ़ दर्जन लोगों में गिने जाते थे जो पढ़ना-लिखना जानते थे। इसलिए हज़रत आयशा का पहला शैक्षिक संस्थान उनका अपना घर बन गया। अपने पिता से उन्होंने गहरी समझ से भरे हुए शेर और अरब ख़तीबों (वक्ताओं) के भाषण सुने और उन्हें याद कर लिया। इसी प्रकार उन्होंने अपने पिता से इल्मुल-अंसाब (पीढ़ियों का ज्ञान) सीखा, जो मानो अरब के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के बराबर था। निकाह के बाद जब वे रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगति में आईं, तो उन्हें यह अवसर मिला कि वे रसूलुल्लाह (सल्ल०) जैसे शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करें। इसलिए यह सिलसिला हर दिन किसी न किसी रूप में चलता रहता था। इस अध्ययन-सभा की बहुत-सी मिसालें हदीस की किताबों में मिलती हैं।

हज़रत आयशा (रज़ि.) मस्जिदे नबवी से सटे एक छोटे से कमरे में रहती थीं। इस कारण वे रसूलुल्लाह (सल्ल०) की रोज़ाना की शिक्षाप्रद बातें ध्यान से सुन पाती थीं।

धार्मिक ज्ञान की शिक्षा किसी निश्चित समय तक सीमित नहीं थी। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगत उन्हें रात-दिन प्राप्त रहती थी। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की शिक्षा की सभाएँ हर दिन मस्जिद-ए-नबवी में होती थीं। हज़रत आयशा (रज़ि.) का कमरा उसके बिल्कुल पास था। इसलिए आप घर के बाहर भी लोगों को जो शिक्षा देते थे, उसमें वह शामिल रहती थीं। अगर कभी दूरी की वजह से कोई बात समझ में नहीं आती, तो रसूलुल्लाह (सल्ल०) जब कमरे में आते, तो वह उसे पूछ लेती थीं। कभी वह उठकर मस्जिद के पास भी चली जाती थीं। इसके अलावा, रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने औरतों के अनुरोध पर सप्ताह में एक दिन उनकी शिक्षा और नसीहत के लिए तय कर दिया था।

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) के बारे में हदीस और सीरत की किताबों में इस तरह के जो उल्लेख मिलते हैं, वे केवल पहली महिला (first lady) के जीवन-चरित्र को नहीं बताते, बल्कि इस्लामी समाज की एक विशेषता को भी बताते हैं। इस्लामी समाज केवल पुरुषों के लिए ही नहीं, बल्कि महिलाओं के लिए भी एक बड़ा शिक्षा-केंद्र है। इस समाज में महिलाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाता है। उन्हें अपने ज्ञान के शौक़ को पूरा करने के अवसर दिए जाते हैं। यहाँ तक कि यह भी संभव है कि कोई महिला अपनी मेहनत से ज्ञान में पुरुषों से भी आगे बढ़ जाए, जैसा कि हज़रत आयशा (रज़ि.) के साथ हुआ।

शिक्षा और प्रशिक्षण के मामले में हज़रत आयशा (रज़ि.) कोई अपवाद स्वरूप व्यक्तित्व की मालिक नहीं हैं, बल्कि वह इस मामले में एक रोल मॉडल हैं। ज्ञान के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियां मुस्लिम महिलाओं के लिए एक मार्गदर्शक उदाहरण है।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) से सीधे दीनी शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त करने का जितना अधिक अवसर हज़रत आयशा (रज़ि.) को मिला, शायद ही किसी पुरुष या महिला को मिला हो। इसके अलावा, उस समय हज़रत आयशा (रज़ि.) अपनी शुरुआती उम्र में थीं, इसलिए वह उस मानसिक स्थिति से पूरी तरह सुरक्षित थीं, जिसे मनोविज्ञान की भाषा में कंडिशनिंग (conditioning)

कहा जाता है। उस समय उनकी उम्र ऐसी थी कि वे हर बात को खुले मन से सुनतीं और उसे आसानी से अपने ज़ेहन में बिठा लेती थीं। साथ ही, हज़रत आयशा बहुत बुद्धिमान और तेज़ समझ रखने वाली थीं। इसलिए वह रसूलुल्लाह (सल्ल०) की हर बात को उसकी पूरी गहराई के साथ समझ लेती थीं। रसूलुल्लाह (सल्ल०) कम शब्दों में बहुत गहरी बातें कहते थे। हज़रत आयशा (रज़ि.) अपनी तेज़ समझ की वजह से उन बातों के अर्थ को समझ लेतीं और उन्हें याद कर लेती थीं। हज़रत आयशा (रज़ि.) को रसूलुल्लाह (सल्ल०) से सीखने का जो विशेष अवसर मिला, उसी का परिणाम था कि वह दीन की गहरी समझ में इतनी महान बन गईं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) के देहांत के बाद बड़े-बड़े सहाबी उनकी ओर रुख़ करते और उनसे हिकमते नुबुव्वत (पैग़म्बरी की हिकमत) की शिक्षा प्राप्त करते थे।

(*औरत: मेमारे इंसानियत*)

शख़्सियत का निर्माण

हज़रत आयशा (रज़ि.) इस्लाम के इतिहास में एक असाधारण शख़्सियत रखती हैं। यह शख़्सियत कैसे बनी, इसकी जानकारी हदीस और सीरत की किताबों में मिलती है। हज़रत आयशा (रज़ि.) क़ुरआन का लगातार अध्ययन करती रहती थीं। उनकी ज़िंदगी का कोई दूसरा उद्देश्य नहीं था। इसके अलावा, उनके लिए ज्ञान प्राप्त करने का सबसे बड़ा माध्यम रसूलुल्लाह (सल्ल०) से सीधे तौर पर सीखना था। सीखने का यह सिलसिला अलग-अलग रूपों में लगातार चलता रहता था, दिन के समय भी और रात के समय भी।

इसकी एक मिसाल उस रिवायत में मिलती है, जिसमें हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) खुद बताती हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) फ़ज्र से पहले की दो रकअत नमाज़ पढ़ते थे। उस समय अगर मैं जाग रही होती, तो आप मुझसे बात करते, और अगर मैं सो रही होती, तो आप लेट जाते (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 743)।

इस रिवायत में हज़रत आयशा (रज़ि.) ने “हद्दसनी” (मुझसे बयान किया) शब्द का इस्तेमाल किया है। इसका यह मतलब नहीं है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) मुझे हदीस सुनाते थे। बल्कि इसका मतलब यह है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) मुझसे बातचीत करते थे। यह बातचीत निश्चित रूप से दीन और ज्ञान के दूसरे विषयों पर होती थी। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) भी उसमें हिस्सा लेती थीं। यानी यह एक तरह का वैचारिक आदान-प्रदान होता था। इस तरह उनके अंदर मानसिक विकास की प्रक्रिया लगातार चलती रही। यहाँ तक कि उनके अंदर वह उच्च गुण पैदा हो गया, जिसके कारण वह इस्लाम के इतिहास में वह भूमिका निभा सकीं, जो उन्होंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) के देहांत के बाद लगभग आधी सदी तक जारी रखा। रात की इस एकांत घड़ी को रसूलुल्लाह (सल्ल०) हज़रत आयशा की बौद्धिक और आध्यात्मिक तैयारी के लिए इस्तेमाल करते थे। अर्थात्, आप उन्हें वही शिक्षा देते थे जिसे क़ुरआन में चरित्र निर्माण और गहरी समझ की शिक्षा कहा गया है। (क़ुरआन, 3:164)

इस बात को और स्पष्ट करने के लिए यहाँ हदीस और सीरत की किताबों से कुछ और उदाहरण दिए जाते हैं। उनसे पता चलता है कि नुबुव्वत के दौर में हज़रत आयशा (रज़ि.) की शख़्सियत किस तरह तैयार हुई।

हज़रत आयशा (रज़ि.) का रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथ विचार-विमर्श किस तरह होता था, इसकी एक मिसाल यह है कि एक बार रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया: जिससे हिसाब लिया गया, वह अज़ाब में पड़ा। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने पूछा, “ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह ने क़ुरआन में तो यह फ़रमाया है: ‘...तो उससे आसान हिसाब लिया जाएगा।’। (84:8) यानी आप तो साफ़ तौर पर फ़रमा रहे हैं कि हिसाब के बाद कोई नहीं बच सकता, जबकि क़ुरआन के अनुसार हिसाब के बाद भी आदमी अज़ाब से बच सकता है।” रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने जवाब दिया कि यह तो केवल कर्मों के सामने पेश किए जाने की बात है। लेकिन जिसके कर्मों की बारीकी से जाँच-

पड़ताल शुरू हो गई, वह नष्ट हो गया। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 103)। इस उदाहरण से पता चलता है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) से सीखने में हज़रत आयशा (रज़ि.) केवल सुनती नहीं थीं, बल्कि यह वास्तव में विचार-विमर्श होता था।

इसी तरह एक बार हज़रत आयशा (रज़ि.) ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) से पूछा कि अगर मुश्रिकों (वे लोग जो अल्लाह के साथ दूसरों को साझी ठहराते हैं) ने कोई अच्छा काम किया हो, तो क्या उसका बदला उन्हें मिलेगा या नहीं। इस सिलसिले में उन्होंने अब्दुल्लाह बिन जुदआन का उदाहरण दिया। वह मुश्रिक था और उसी हालत में उसका देहांत हुआ। लेकिन वह बहुत अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति था। वह लोगों की मदद किया करता था। हज़रत आयशा (रज़ि.) ने पूछा कि क्या उसका यह नैतिक काम आख़िरत में उसके लिए लाभदायक होगा? रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं। क्योंकि उसने कभी यह नहीं कहा: 'ऐ मेरे रब! बदले के दिन मेरे गुनाहों को माफ़ कर देना।' (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 214)।

इस सिलसिले की एक घटना यह है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने एक बार यह फ़ैसला किया कि वह एक महीने तक अपनी पत्नियों से अलग रहेंगे। इतिहास में इसे ईला (पत्नी से कुछ समय अलग रहने की क़सम) की घटना कहा जाता है। यह घोषणा करके आप पास के एक मकान के ऊपरी कमरे में चले गए। ईला का यह मामला हिजरी महीने की पहली तारीख़ से शुरू हुआ। 29 दिन पूरे होने के बाद रसूलुल्लाह (सल्ल०) ऊपर के कमरे से नीचे आए। जब आप हज़रत आयशा (रज़ि.) के कमरे में आए, तो उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने तो एक महीने तक अलग रहने की बात कही थी, जबकि अभी महीने के तीस दिन पूरे होने में एक दिन बाकी है।" आपने फ़रमाया, "महीना 29 दिन का भी होता है, और जिब्रील ने मुझे खबर दी है कि आज नया चाँद हो गया है।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 378, 4913)

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) के इस प्रश्न और उत्तर से एक और दीनी मसला मालूम होता है, जिसका संबंध नए चाँद के दिखाई देने से है। इससे यह बात निकलती है कि यदि नए चाँद को अपनी आँखों से न देखा गया हो, लेकिन किसी भरोसेमंद सूचना से 29 तारीख़ को यह मालूम हो जाए कि चाँद हो गया है, तो उसे स्वीकार किया जाएगा और उसी के आधार पर इबादत का क्रम चलाया जाएगा। इससे पता चलता है कि शरीअत में चाँद की जानकारी प्राप्त करना भी कितना महत्वपूर्ण है, चाहे वह चाँद को सीधे देखकर हो या किसी विश्वसनीय माध्यम से उसकी जानकारी मिलने के द्वारा।

एक बार एक व्यक्ति ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) से मिलने की अनुमति माँगी। आपने फ़रमाया, "उसे आने दो, वह अपने परिवार में बुरा आदमी है।" जब वह आकर बैठा, तो आपने उससे बहुत नरमी के साथ बात की। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) को आश्चर्य हुआ। जब वह चला गया, तो उन्होंने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप तो उसे अच्छा नहीं मानते थे, लेकिन जब वह आया तो आपने उससे नरमी के साथ बात की।" रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, "आयशा! सबसे बुरा आदमी वह है, जिसकी बदअख़लाक़ी (दुर्व्यवहार) से डरकर लोग उससे मिलना छोड़ दें।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 6032)

एक बार आपने फ़रमाया, "संयम के साथ काम करो। लोगों को अपने क़रीब लाओ और उन्हें खुशख़बरी सुनाओ। किसी व्यक्ति का अपना अमल उसे जन्नत में नहीं ले जाएगा।" हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) को यह आख़िरी बात अजीब लगी। उन्होंने समझा कि जो लोग मासूम हैं, वे इससे अलग होंगे। उन्होंने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या आप भी नहीं?" आपने फ़रमाया, "नहीं, जब तक कि अल्लाह अपनी क्षमा और दया से मुझे न ढाँक ले।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 6467)

एक बार रसूलुल्लाह (सल्ल०) के पास कुछ यहूदी आए। उन्होंने अस्सलामु अलैक (आप पर सलामती हो) कहने के बजाय ज़बान दबाकर अस्सामु

अलैक (तुम पर मौत आए) कहा। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) यह सुन रही थीं। वह अपने आप को रोक न सकीं और बोलीं: अलैकुम अस्साम वल्लानतु (तुम पर मौत और लानत हो)। रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम्हें नरमी अपनानी चाहिए। अल्लाह हर बात में नरमी को पसंद करता है।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 6395)

एक रिवायत के अनुसार, हज़रत आयशा (रज़ि.) कहती हैं कि एक सभा में हज़रत सफ़िय्या (रसूलुल्लाह (सल्ल०) की पत्नी) का ज़िक्र हुआ। हज़रत सफ़िय्या का क़द कुछ छोटा था। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने हाथ से इशारा करते हुए कहा, "सफ़िय्या तो बस इतनी-सी हैं।" (अर्थात उनका क़द छोटा है।) रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुमने ऐसी बात कही है कि अगर उसे समुद्र में डाल दिया जाए, तो समुद्र का पानी भी गंदा हो जाए।" (*सुनन अबू दाऊद*, हदीस संख्या 4875)

इसी तरह की एक और रिवायत हज़रत आयशा (रज़ि.) से मर्वी (वर्णित) है, जिसमें रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने उन्हें संबोधित करते हुए फ़रमाया: 'तुम छोटे-छोटे गुनाहों से बचो।' (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 25177)।

इन दोनों रिवायतों से एक बहुत महत्वपूर्ण बात मालूम होती है। वह यह कि इंसान को उन गुनाहों से भी पूरी तरह बचना चाहिए, जिन्हें लोग मामूली समझते हैं और बार-बार करते रहते हैं। क्योंकि इस तरह की आदत औरत या मर्द को गुनाहों के बारे में बेपरवाह बना देती है। और जो औरत या मर्द छोटे गुनाहों के बारे में अपनी संवेदनशीलता खो देता है, वह आसानी से बड़े गुनाहों में भी पड़ जाएगा।

एक अवसर पर रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने यह दुआ माँगी: "ऐ अल्लाह! मुझे निर्धन अवस्था में जीवित रख, निर्धन अवस्था में मृत्यु दे और क़यामत के दिन मुझे निर्धनों के समूह के साथ उठा।" हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! ऐसा क्यों?" आपने फ़रमाया, "निर्धन लोग धनवानों से चालीस साल पहले जन्नत में जाएँगे। ऐ आयशा! किसी माँगने वाले को

खाली हाथ वापस मत करना, चाहे उसे छुआरे का एक टुकड़ा ही क्यों न देना पड़े। ज़रूरतमंदों से प्रेम करो और उन्हें अपने पास जगह दिया करो।” (*सुनन तिरमिज़ी*, हदीस संख्या 2352)

इन रिवायतों से मालूम होता है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) और हज़रत आयशा (रज़ि.) के बीच जो संबंध था, वह केवल बोलने वाले और सुनने वाले का संबंध नहीं था। बल्कि वह दो तरफ़ा बातचीत और विचारों का आदान-प्रदान का संबंध था। मानो यह एक प्रकार का विचार-विमर्श था। इस विचार-विमर्श के दौरान बातें अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती थी। प्रश्न और उत्तर के माध्यम से हर विषय के अलग-अलग पहलू सामने आते थे।

क़ुरआन में रसूल के चार काम बताए गए हैं, जिनमें से एक तज़किया (आंतरिक शुद्धि) है। (आले इमरान, 3:164) तज़किया से कोई रहस्यमय (mysterious) चीज़ मुराद नहीं है। यह एक स्पष्ट प्रक्रिया है। इससे वही चीज़ मुराद है, जिसे ज़ेहनी इरतिक़ा (बौद्धिक विकास) कहा जाता है। ज़ेहनी इरतिक़ा का ही एक परिणाम रूहानी इरतिक़ा (आध्यात्मिक विकास) है। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) को ये सभी बौद्धिक और आध्यात्मिक लाभ रसूलुल्लाह (सल्ल०) से लगातार सीखते रहने से प्राप्त हुआ।

(*औरत: मेमारे इंसानियत*)

विवेकपूर्ण मार्गदर्शन

इंसान की ज़िंदगी के शुरुआती लगभग दस साल उसके व्यक्तित्व के निर्माण का समय होते हैं। इस अवधि में उसकी शख़्सियत का बड़ा हिस्सा विकसित हो जाता है। इसलिए जीवन का यह शुरुआती दौर शिक्षा और व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने इस प्रशिक्षण के उद्देश्य के लिए अपनी ज़िंदगी में दो व्यक्तियों को विशेष रूप से चुना। एक हज़रत अली बिन अबी तालिब और दूसरी हज़रत आयशा बिन्त अबू बक्र। दोनों को आपने यह अवसर दिया कि वे कम उम्र में आपकी संगत में रहकर प्रशिक्षण पाएँ, और वह चीज़ प्राप्त करें, जिसे क़ुरआन (2:129) में हिकमते रसूल (Prophetic wisdom) कहा गया है।

गहरी समझ विकसित करने वाली यह शिक्षा कम उम्र में ही सबसे अच्छी तरह प्राप्त की जा सकती थी। हज़रत अली बिन अबी तालिब को अपनी संगत में रखने के लिए रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने यह व्यवस्था की कि बचपन में ही उनकी देखभाल और मार्गदर्शन की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। महिला होने के कारण हज़रत आयशा के लिए यह तरीका अपनाना संभव नहीं था। इसलिए आपने हज़रत आयशा बिन्त अबू बक्र से कम उम्र में निकाह किया। रिवायतों के अनुसार, यह निकाह उस समय हुआ जब हज़रत आयशा की उम्र छह साल थी, और रुख़्सती उस समय हुई जब उनकी उम्र नौ साल हो चुकी थी। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 5188)

कुछ लोगों ने हज़रत आयशा (रज़ि.) की निकाह की उम्र के बारे में अलग व्याख्या करने की कोशिश की है, लेकिन इसकी आवश्यकता नहीं है। यह केवल दृष्टिकोण का अंतर है। वे इस घटना को केवल निकाह के संदर्भ में देखते हैं, जबकि वास्तव में यह व्यक्तित्व निर्माण के शुरुआती दौर में नबवी शिक्षा और मार्गदर्शन देने का मामला था।

बाद के परिणाम भी इस तर्क की पुष्टि करते हैं। इसलिए इस्लामी विद्वानों के बीच यह एक स्थापित बात मानी जाती है कि हज़रत अली (रज़ि.) और हज़रत आयशा (रज़ि.), दोनों को इस्लाम की गहरी समझ और धार्मिक ज्ञान के मामले में सभी सहाबा के बीच विशेष स्थान प्राप्त था।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) से लाभ प्राप्त करने का एक तरीका यह था कि आपकी

बातों को याद रखा जाए और उन्हें लोगों तक पहुंचाया जाए। इस क्षेत्र में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) का विशेष स्थान है। दूसरा तरीक़ा यह था कि आपकी बातों को सुनकर और आपके आचरण को देखकर उनके गहरे अर्थ और उनमें छिपी शिक्षा को समझा जाए। यह लाभ केवल लंबे समय तक आपके निकट रहकर ही प्राप्त किया जा सकता था। इसी उद्देश्य से हज़रत अली और हज़रत आयशा (रज़ि.) को कम उम्र में विशेष रूप से यह अवसर प्राप्त हुआ।

उदाहरण के लिए, हज़रत अली बिन अबी तालिब का एक कथन इन शब्दों में आया है: हर इंसान का मूल्य उसकी योग्यता और कौशल के अनुसार होता है। (जामिऊ बयानिल-इल्म व फ़ज़्लिही, हदीस संख्या 608-609)। यह बात किसी हदीस में इन शब्दों में नहीं मिलती। यह रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगत से निकाली गई एक गहरी समझ है। इसका मतलब यह है कि किसी इंसान की असली क़ीमत इस बात से तय होती है कि वह अपना काम कितनी लगन, कुशलता और बेहतरीन तरीके से करता है।

The value of a person lies in his excellence.

यही बात हज़रत आयशा बिन्त अबू बक्र (रज़ि.) के बारे में भी कही जा सकती है। उनकी गहरी समझ और बातों के भीतर छिपे अर्थों को समझने की क्षमता बहुत प्रसिद्ध थी। उनकी अनेक व्याख्याएँ और सूझ-बूझ भरी बातें उनकी असाधारण समझ का प्रमाण हैं। यह सब उन्हें रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगत से प्राप्त हुआ था। उदाहरण के लिए उनका ये कथन: "रसूलुल्लाह (सल्ल०) को जब भी दो बातों में से एक को चुनना होता, तो आप हमेशा आसान बात को चुनते।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 6786)

Whenever the Prophet had to choose between two options, he would always choose the easier one.

रसूलुल्लाह (सल्ल०) से सुनी हुई बातों को हदीस कहा जाता है। हज़रत अली और हज़रत आयशा की विशेषता इस्तिनबात (गहरे अर्थ निकालने की क्षमता) के दृष्टि से है। उन्होंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगत में रहकर गहरी समझ की बातें सीखी और उन्हें अपने शब्दों में बयान किया। कम उम्र में इन दोनों के लिए रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगत बहुत लाभदायक सिद्ध हुई। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की निकट संगति ने उनके भीतर बातों को तुरंत ग्रहण करने, उनके गहरे अर्थ को समझने और उनसे सही निष्कर्ष निकालने की असाधारण योग्यता विकसित कर दी थी।

(*अल-रिसाला*, अगस्त 2016)

इस्लाह में तदरीज

(धीरे-धीरे सुधार की प्रक्रिया)

एक वर्णन के अनुसार, हज़रत आयशा (रज़ि.) ने बताया कि क़ुरआन में सबसे पहले वे आयतें और सूरतें नाज़िल हुईं जिनमें जन्नत और जहन्नम का ज़िक्र था। जब लोगों के दिलों में इस्लाम अच्छी तरह बैठ गया और वे उसे स्वीकार करने लगे, तब हलाल और हराम से संबंधित आदेश नाज़िल हुए। उन्होंने कहा कि यदि आरंभ में ही यह आदेश आ जाता कि शराब मत पियो, तो लोग कहते कि हम शराब कभी नहीं छोड़ेंगे। इसी प्रकार, यदि आरंभ में ही यह आदेश दिया जाता कि विवाह के बाहर यौन संबंध न बनाओ, तो लोग कहते कि हम इसे कभी नहीं छोड़ेंगे। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 4993)

इस से नबी की गहरी समझ का एक महत्वपूर्ण पहलू स्पष्ट होता है। यह वही तरीक़ा है जिसमें लोगों के सुधार का काम धीरे-धीरे किया जाता है। क्योंकि इंसान का सुधार कोई आसान काम नहीं है, बल्कि यह एक कठिन प्रक्रिया

है। आम तौर पर इंसान कुछ विचारों और आदतों का अभ्यस्त हो जाता है। वह उन्हीं को सही समझने लगता है। इसलिए वह किसी नई बात को तुरंत स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। ऐसी स्थिति में लोगों के सुधार का प्रभावी तरीका यही है कि यह काम गहरी समझ और चरणबद्ध तरीक़े से किया जाए। रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने अरब में सबसे पहले लोगों की सोच बदली। लोगों के अंदर स्वीकार करने का स्वभाव पैदा किया। यहाँ तक कि जब उनके अंदर सुधार को स्वीकार करने की क्षमता पैदा हो गई, तब उसके बाद आपने शरीअत के आदेश लागू किए। यदि पहले लोगों की सोच और चरित्र का निर्माण न किया जाता और सीधे नियम लागू कर दिए जाते, तो यह इंसानी स्वभाव के खिलाफ होता। तब अरब समाज में जो बड़ा परिवर्तन आया, वह संभव नहीं हो पाता।

(*अल-रिसाला*, जनवरी 2001)

रहस्य बनाए रखना

फ़त्ह-ए-मक्का के घटनाक्रम में उल्लेख मिलता है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने मदीना में सफ़र की तैयारी का आदेश दिया। इस आदेश के बाद मुसलमान अपनी-अपनी आवश्यक तैयारियों में लग गए। उसी समय हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) अपनी बेटी हज़रत आयशा (रज़ि.) के घर आए, जो रसूलुल्लाह (सल्ल०) की पत्नी थीं। वह उस समय सफ़र की तैयारी कर रही थीं। हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने अपनी बेटी से पूछा, "क्या रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने तुम्हें इसका हुक्म दिया है?" हज़रत आयशा (रज़ि.) ने कहा, "हाँ।" हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने फिर पूछा, "यह तैयारी किस सफ़र के लिए है?" हज़रत आयशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "अल्लाह की क़सम, मुझे नहीं मालूम।" (*सीरत इब्न हिशाम*, खण्ड 2, पृष्ठ 397)

रसूलुल्लाह (सल्ल०) का तरीका यह था कि नाज़ुक और महत्वपूर्ण मामलों में आप पूरी सावधानी के साथ गोपनीयता बरतते थे। फ़त्ह-ए-मक्का के अवसर पर भी रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने पूरी गोपनीयता बनाए रखी। आप दस हज़ार सहाबा के साथ मदीना से निकले, लेकिन किसी को यह नहीं बताया कि जाना कहाँ है। सहाबा कहते हैं कि चलते-चलते जब हम उस जगह पहुँचे, जहाँ से रास्ता सीधे मक्का की ओर जाता था, तब हमें पता चला कि यह सफ़र मक्का के लिए है।

गंभीर सामूहिक मामलों में राज़दारी बहुत महत्वपूर्ण होती है। अक्सर सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि दूसरे पक्ष को आपकी योजना की पहले से जानकारी न हो सके। रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने इस गहरी समझ को अपनी पूरी ज़िंदगी में बहुत ध्यान के साथ अपनाया।

(*अल-रिसाला*, जनवरी 1999)

हज़रत आयशा के इस्तिनबात

(गहरे अर्थ निकालने की समझ)

हदीस की विभिन्न पुस्तकों में हज़रत आयशा (रज़ि.) से कुल 2210 हदीसें मिलती हैं। यद्यपि कुछ ही सहाबा से इससे अधिक हदीसें मिलती हैं। उदाहरण के तौर पर, हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) से 5364 हदीसें मिलती हैं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि.) से 2630 हदीसें और हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि.) से 2286 हदीसें मिलती हैं। लेकिन एक मामले में हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) का स्थान सबसे ऊँचा माना जाता है, और वह है हदीसों की गहरी समझ तथा उनसे शिक्षा और मार्गदर्शन के पहलुओं को स्पष्ट करना। यह विशेषता उन्हें इसलिए प्राप्त हुई क्योंकि रसूलुल्लाह (सल्ल०) की निरंतर संगत के कारण उन्होंने आपके स्वभाव और व्यवहार को सबसे

अच्छी तरह समझा। इस संबंध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:

1. सहीह अल-बुख़ारी में हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) का एक विस्तारपूर्ण कथन मिलता है। उसका सार यह है: क़ुरआन में सबसे पहले वे सूरतें उतरीं जिनमें जन्नत और जहन्नम का वर्णन था। जब लोगों के दिल इस्लाम की ओर आकर्षित हो गए और वे उसे स्वीकार करने लगे, तब हलाल और हराम से संबंधित नियम बताए गए। यदि शुरुआत में ही शराब छोड़ने का आदेश दिया जाता, तो लोग कहते कि हम इसे कभी नहीं छोड़ेंगे। इसी तरह, यदि शुरू में ही विवाह के बाहर के यौन संबंधों से मना किया जाता, तो लोग कहते कि हम इसे कभी नहीं छोड़ेंगे।

हज़रत आयशा (रज़ि.) ने आगे बताया कि जब मैं बचपन में खेला करती थी, उस समय क़ुरआन की यह आयत नाज़िल हुई थी: "बल्कि क़यामत उनके वादे का समय है और क़यामत बड़ी सख़्त और बड़ी कड़वी चीज़ है।" (54:46)। उन्होंने यह भी बताया कि सूरह अल-बक़रह और सूरह अन-निसा उस समय नाज़िल हुईं, जब मैं रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथ थी। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 4993)

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने अपने इस कथन में जिस सिद्धांत की ओर संकेत किया है, वह क़ुरआन और हदीस में इन्हीं शब्दों में नहीं मिलता। लेकिन रसूलुल्लाह (सल्ल०) की निरंतर संगत से उन्होंने यह समझ लिया था कि क़ुरआन के आदेश लोगों पर एक साथ नहीं, बल्कि धीरे-धीरे लागू किए गए थे। दूसरे शब्दों में, क़ुरआन पर आधारित समाज बनाने का काम कानून और सीमाओं को लागू करने से शुरू नहीं हो सकता। उसका सही तरीका यह है कि पहले लोगों की सोच बदली जाए। सबसे पहले लोगों के दिलों को इन नियमों को अपनाने के लिए तैयार करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, किसी समाज में व्यवहारिक नियम तभी प्रभावी होते हैं, जब पहले लोगों की सोच बदले। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने यह गहरी समझ रसूलुल्लाह (सल्ल०) की लंबी संगत और उनसे होने वाले विचारपूर्ण संवाद से प्राप्त की थी।

2. हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) की एक दूसरी रिवायत इस प्रकार है: जंग-ए-बुआस के परिणामों को अल्लाह तआला ने अपने रसूल (सल्ल०) के मिशन के लिए लाभदायक बना दिया। जब आप मदीना आए, तब वहाँ के लोगों की आपसी एकता टूट चुकी थी और उनके नेता युद्ध में मारे गए थे या घायल हो गए थे। ऐसी स्थिति में लोगों ने इस्लाम को अपनाया, और अल्लाह ने इस परिस्थिति को उनके लिए इस्लाम की ओर आने का माध्यम बना दिया। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 3777)

मक्का के लोगों ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) के संदेश का कड़ा विरोध किया, जबकि उससे तीन सौ मील दूर स्थित मदीना में आपका पैग़ाम बिना किसी विरोध के फैल गया। यह अंतर क्यों था? इसका उत्तर हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) की ऊपर बताई गई रिवायत में मिलता है।

जैसा कि मालूम है, मक्का और मदीना के इस अंतर का ज़िक्र न क़ुरआन में है और न ही हदीस में। फिर हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) को यह महत्वपूर्ण बात कैसे मालूम हुई? इसका माध्यम रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगत थी। रसूलुल्लाह (सल्ल०) इस विषय पर अपनी बातचीत में जो चर्चा करते थे, उनसे हज़रत आयशा (रज़ि.) ने इस वास्तविकता को समझा। बाद में उन्होंने इस समझ को लोगों तक पहुँचाया, जिससे पूरी उम्मत को इसका लाभ मिला।

हज़रत आयशा (रज़ि.) की इस रिवायत के अनुसार, असल बात यह थी कि मक्का के विपरीत मदीना में वे बड़े क़बीलाई सरदार मौजूद ही नहीं थे, जो इस प्रकार के विरोध का मुख्य कारण बनते हैं। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की नुबुव्वत से कुछ ही पहले वहाँ आपसी युद्ध हुआ था, जिसमें मदीना के अधिकांश बड़े सरदार मारे गए थे। इतिहास से पता चलता है कि किसी भी आंदोलन या मिशन का विरोध आमतौर पर समाज के प्रभावशाली और नेतृत्वकारी लोग करते हैं। इसलिए जब मदीना में ऐसे नेता नहीं रहे, तो विरोध का मुख्य कारण भी अपने-आप समाप्त हो गया। नतीजतन, आम लोगों के लिए इस्लाम के

संदेश को खुले मन से सुनने और समझने में कोई बाधा नहीं रही। जब उन्होंने उसे सुना तो वह उन्हें अपने अंतर्मन और प्रकृति की पुकार लगी, जिसे उन्होंने खुले दिल से स्वीकार्य कर लिया।

3. सहीह मुस्लिम में यह रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) के देहांत के बाद, ख़िलाफ़ते राशिदा (इस्लाम के प्रारम्भिक चार ख़लीफ़ाओं का दौर) के समय हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) के शागिर्द इब्न अबी मुलैका ने उनसे पूछा, "अगर रसूलुल्लाह (सल्ल०) स्वयं किसी को ख़लीफ़ा बनाते, तो किसे बनाते?" उन्होंने फ़रमाया, "अबू बक्र को।" पूछा गया, "उनके बाद?" उन्होंने उत्तर दिया, "उमर को।" फिर पूछा गया, "उसके बाद?" उन्होंने कहा, "अबू उबैदा बिन जर्राह को।" फिर पूछा गया, "उसके बाद किसे?" इस प्रश्न पर हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) चुप हो गई। (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 2385)

इस कथन से पता चलता है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगत से हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने जो बातें सीखी थीं, उनमें एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि सामूहिक मामलों में व्यक्ति की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण होती है। सामूहिक जीवन केवल नियमों या व्यवस्था के सहारे नहीं चलता, बल्कि उसके लिए ऐसे योग्य व्यक्ति की भी आवश्यकता होती है, जो विशेष क्षमताएँ रखता हो।

हज़रत आयशा (रज़ि.) के अनुसार, इस्लाम के शुरुआती दौर में केवल तीन ऐसे व्यक्ति थे, जो लोगों से जुड़ी बड़ी ज़िम्मेदारियों को सफलतापूर्वक निभा सकते थे। इससे यह गहरी समझ मिलती है कि समाज में सुधार का वास्तविक आधार केवल एक व्यवस्था को हटाकर दूसरी व्यवस्था स्थापित करना नहीं है, बल्कि उसके लिए योग्य और सक्षम व्यक्तियों को तैयार करना है। राजनीतिक समझ की यह महत्वपूर्ण बात, जो हज़रत आयशा (रज़ि.) के माध्यम से उम्मत तक पहुँची, शायद किसी और माध्यम से इस स्पष्टता के साथ सामने नहीं आती।

4. हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) की एक रिवायत यह है कि सबसे बड़ा

गुनहगार वह शायर है, जो पूरे क़बीले की बुराई करे। अर्थात, केवल एक या दो व्यक्तियों की बुराई के कारण पूरे क़बीले को बुरा कहना एक बहुत बड़ी नैतिक बुराई है। (*अल-अदबुल-मुफ़रद*, इमाम बुख़ारी, हदीस संख्या 874)

हज़रत आयशा (रज़ि.) की इस बात से यह सीख मिलती है कि किसी व्यक्ति की ग़लती के आधार पर पूरे समूह के बारे में राय बना लेना उचित नहीं है। अक्सर ऐसा होता है कि किसी क़ौम या क़बीले के एक व्यक्ति की कोई कमी या बुराई सामने आती है, तो लोग उसी के आधार पर पूरे समुदाय को दोषी ठहराने लगते हैं। यह तरीका नैतिक रूप से गलत और इस्लामी दृष्टि से भी अनुचित है। जीवन का यह महत्वपूर्ण सिद्धांत भी हज़रत आयशा (रज़ि.) के माध्यम से बहुत स्पष्ट रूप में सामने आता है।

5. इब्न अबी अस-साइब एक ताबिई थे। वे मदीना में लोगों को उपदेश दिया करते थे। उनकी आदत थी कि वे तुकबंदी वाली दुआएँ पढ़ते थे और हर समय लोगों को नसीहत देने के लिए तैयार रहते थे। एक बार हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने उनसे कहा, "तुम मुझसे तीन बातों का वादा करो, नहीं तो मैं तुमसे सख़्ती से सवाल करूँगी।" उन्होंने पूछा, "ऐ उम्मुल-मोमिनीन! वे तीन बातें क्या हैं?" हज़रत आयशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "दुआ करते समय तुकबंदी वाले शब्दों का इस्तेमाल मत करो, क्योंकि रसूलुल्लाह (सल्ल०) के सहाबा ऐसा नहीं करते थे। सप्ताह में केवल एक दिन लोगों को दीन की बातें समझाया करो। यदि यह संभव न हो तो दो दिन, और यदि इससे अधिक करना चाहो तो तीन दिन। लोगों को अल्लाह की किताब से ऊबने मत दो। और जब लोग आपस में बातचीत कर रहे हों, तो उनकी बात रोककर अपनी नसीहत शुरू न करो। जब वे स्वयं सुनना चाहें और तुम्हें बुलाएँ, तभी उन्हें दीन की बातें बताओ" (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 25820)

हज़रत आयशा (रज़ि.) की इस बात से दीन की मूल भावना समझ में आती है। दीन की शिक्षा यह है कि दुआ इंसान के दिल की सच्ची भावनाओं का

इज़हार हो। जब दुआ में बनावटी तुकबंदी और दिखावा आ जाता है, तो उसकी सादगी और सच्चाई प्रभावित होती है। इसी तरह नसीहत का उद्देश्य किसी की भलाई की बात कहना है। इसलिए समझाते समय सामने वाले की स्थिति और मनःस्थिति का ध्यान रखना चाहिए। एक ईमान वाले व्यक्ति का स्वभाव यह होता है कि वह दूसरों की बात ध्यान से सुने और जब स्वयं कुछ कहे, तो लोगों के स्वभाव और स्थिति को भी ध्यान में रखे।

7. एक व्यक्ति ने हज़रत आयशा (रज़ि.) से पूछा, "ऐ उम्मुल-मोमिनीन! कुछ लोग एक ही रात में क़ुरआन दो-दो और तीन-तीन बार पढ़ लेते हैं।" हज़रत आयशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "उन्होंने पढ़ा, लेकिन वास्तव में नहीं पढ़ा।"। रसूलुल्लाह (सल्ल०) पूरी रात नमाज़ में खड़े रहते थे, लेकिन सूरह अल-बक़रह, आले इमरान और सूरह अन-निसा से आगे नहीं बढ़ते थे। जब आप किसी ख़ुशख़बरी वाली आयत पर पहुँचते, तो अल्लाह से दुआ करते, और जब किसी चेतावनी वाली आयत पर पहुँचते, तो अल्लाह की पनाह माँगते। (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 24609)

इस कथन से दीन की मूल भावना से जुड़ी दो महत्वपूर्ण बातें समझ में आती हैं। पहली, क़ुरआन को कैसे पढ़ना चाहिए, और दूसरी, नफ़्ल (स्वेच्छा से पढ़ी जाने वाली) नमाज़ अदा करने का सही तरीक़ा क्या है। रसूलुल्लाह (सल्ल०) ये दोनों काम अधिकतर अपने कमरे में करते थे, इसलिए इनकी शिक्षा संसार तक आपकी पत्नी के माध्यम से ही पहुँच सकती थी। हज़रत आयशा (रज़ि.) ने इस शिक्षा को उम्मत तक पहुँचाने का कार्य किया।

इस रिवायत से मालूम होता है कि क़ुरआन की तिलावत में मूल रूप से तदब्बुर (गहराई से चिंतन) अपेक्षित है, न कि केवल वह काम जिसे आम तौर पर ख़त्म-ए-क़ुरआन कहा जाता है।

8. जब काबा पर नया गिलाफ़ (काबा की चादर) चढ़ाया जाता है और पुराना गिलाफ़ उतार लिया जाता है, तो यह प्रश्न उठता है कि पुराने गिलाफ़ का

क्या किया जाए। पहले ऐसा होता था कि सम्मान और आदर के कारण पुराने गिलाफ़ को ज़मीन में दफ़्न कर दिया जाता था। शैबा बिन उस्मान, जो उस समय काबा के संरक्षक थे, उन्होंने हज़रत आयशा से कहा कि हम सारे पुराने गिलाफ़ को इकट्ठा करके एक गहरा कुआँ खोदते हैं और उसमें दफ़्न कर देते हैं, ताकि नापाकी की हालत में कोई उसे न पहन ले। हज़रत आयशा ने उनसे फ़रमाया, "यह ठीक नहीं है। तुम ग़लत करते हो। जब गिलाफ़ काबा से उतार लिया गया, तो वह एक सामान्य कपड़ा है। अब यदि कोई उसे नापाकी की हालत में भी पहन ले, तो इसमें कोई हर्ज नहीं है। "तुम्हें चाहिए कि उसे बेच दिया करो, और उससे जो धन मिले, उसे ग़रीबों और मुसाफ़िरों में बाँट दिया करो।" (*अस-सुनन अल-कुबरा*, अल-बैहक़ी, हदीस संख्या 9731)

हज़रत आयशा ने अपनी गहरी समझ से यह जाना कि सम्मान का यह तरीक़ा शरीअत से सिद्ध नहीं है, क्योंकि इसका हुक्म न अल्लाह ने दिया है और न उसके रसूल ने।

हज़रत आयशा की यह बात दीन की मूल शिक्षा के बिल्कुल अनुरूप है। लेकिन यह इतनी सूक्ष्म और गहरी बात है कि एक सामान्य मुसलमान इसे कहने का साहस नहीं कर सकता। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की निरंतर संगत से उन्हें दीन की जो सही समझ प्राप्त हुई थी, उसी ने उनके अंदर यह विश्वास पैदा किया कि वे पूरे भरोसे के साथ इस बात को कह सकें।

हदीस की किताबों में हज़रत आयशा (रज़ि.) से ऐसी अनेक बातें मिलती हैं। ये कथन बताते हैं कि कम उम्र में रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगत और साथ उन्हें मिलना दीनी दृष्टि से कितना महत्वपूर्ण था। यदि ऐसा न हुआ होता, तो दीन की बहुत-सी गहरी समझ और महत्वपूर्ण बातें बाद की पीढ़ियों तक नहीं पहुँच पातीं, क्योंकि उन्हें केवल रसूलुल्लाह (सल्ल०) की निकट संगत से ही समझा जा सकता था।

हज़रत आयशा का एक बहुत महत्वपूर्ण कथन सहीह अल-बुख़ारी में कई

स्थानों पर मिलता है। उसके शब्द ये हैं: “रसूलुल्लाह (सल्ल०) को जब भी दो बातों में से किसी एक को चुनना होता, तो आप हमेशा आसान बात को चुनते थे।” (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 3560)।

हज़रत आयशा अपनी इस रिवायत में रसूलुल्लाह (सल्ल०) की सामान्य नीति बयान करती हैं। वह यह कि व्यवहारिक जीवन में आपका स्थायी तरीक़ा यह था कि जब भी आपके सामने दो विकल्प होते, तो आप कठिन विकल्प (harder option) को छोड़कर आसान विकल्प (easier option) को चुनते थे। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की इस सामान्य नीति का यह पहलू इतना गहरा है कि इसे केवल वही व्यक्ति समझ सकता है, जिसने लंबे समय तक आपकी संगत पाई हो और जो असाधारण बुद्धि का मालिक हो।

इस विषय पर रसूलुल्लाह (सल्ल०) का कोई कथन इन्हीं शब्दों में नहीं मिलता, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि यह सिद्धांत आपकी पूरी ज़िंदगी में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, जब आपने मक्का में तौहीद के संदेश का प्रचार शुरू किया, तो एक तरीक़ा यह हो सकता था कि काबा में रखे 360 बुतों को बाहर निकाल कर इसकी शुरुआत करते। लेकिन आपने ऐसा नहीं किया। आपने बुतों के मुद्दे को अलग रखते हुए लोगों तक शांतिपूर्ण ढंग से संदेश पहुँचाने का काम शुरू किया। निस्संदेह यह कठिन और टकराव वाले रास्ते के बजाय आसान, व्यावहारिक और अधिक परिणामकारी रास्ता चुनने का उदाहरण था।

इसी प्रकार मक्का के अंतिम दौर में रसूलुल्लाह (सल्ल०) के सामने दो रास्ते थे—एक, मक्का के विरोधियों से संघर्ष करना, और दूसरा, मक्का छोड़कर मदीना हिजरत कर जाना। आपने दूसरा रास्ता चुना। यह स्पष्ट रूप से कठिन और टकराव वाले रास्ते के बजाय आसान और अधिक लाभदायक रास्ता अपनाने का उदाहरण था। इसी तरह हिजरत के बाद हुदैबिया के अवसर पर भी आपके सामने दो रास्ते थे। एक यह कि विरोधियों की रुकावट का सामना करते हुए मक्का जाकर उमरा करने का प्रयास किया जाए, और

दूसरा यह कि हुदैबिया से वापस मदीना लौट जाया जाए। पहला रास्ता संघर्ष का था, जबकि दूसरा समझौते और शांति का। आपने इस अवसर पर शांति और समझौते का रास्ता चुना, जो कठिन रास्ते के बजाय आसान रास्ते को अपनाने का उदाहरण था।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) की पूरी ज़िंदगी इसी गहरी समझ भरी नीति का उदाहरण है। हज़रत आयशा ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथ विचार-विमर्श और आपकी व्यवहारिक ज़िंदगी के गहरे अध्ययन के बाद इस रहस्य को समझा और इसे उम्मत तक पहुँचा दिया। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की सीरत का यह महत्वपूर्ण रहस्य शायद किसी दूसरे पुरुष या महिला के माध्यम से दुनिया तक इस स्पष्टता के साथ न पहुँच पाता।

(*औरत: मेमारे इंसानियत*)

हज़रत आयशा के इस्तिदराकात
(हदीसों की समझ में गलतियों का सुधार)

इस्तिदराक का शाब्दिक अर्थ है, ग़लती का सुधार (correction) करना। हज़रत आयशा (रज़ि.) से बहुत-सी ऐसी रिवायतें हैं, जिन्हें इस्तिदराकात कहा जाता है। इन रिवायतों में हज़रत आयशा (रज़ि.) ने किसी बयान करने वाले की रिवायत का सुधार किया है। किसी व्यक्ति ने कोई बात रसूलुल्लाह (सल्ल०) से जोड़कर बयान की, तो हज़रत आयशा (रज़ि.) ने कहा कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने यह बात इस तरह नहीं कही थी, बल्कि इस तरह कही थी। हज़रत आयशा (रज़ि.) के इस प्रकार के कथनों को इस्तिदराकात-ए-आयशा कहा जाता है।

इस विषय पर हदीस के विद्वानों ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। एक प्रसिद्ध पुस्तक है: अयनुल-इसाबह फ़ी इस्तिदराकि आयशा अलस्सहाबह, इमाम सुयूती (मकतबतुल-इल्म, काहिरा, 1409 हिजरी)। लेखक ने इस पुस्तक में हज़रत आयशा (रज़ि.) के 52 इस्तिदराकात को एकत्र किया है। हज़रत आयशा (रज़ि.) के इस्तिदराकात में से एक यह है:

> हज़रत आयशा (रज़ि.) को यह बात पहुँची कि हज़रत इब्न उमर (रज़ि.) कहते हैं कि अचानक होने वाली मृत्यु ईमान वालों पर अल्लाह की नाराज़गी की निशानी है। इस पर हज़रत आयशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "अल्लाह इब्न उमर पर दया फ़रमाए। हज़रत आयशा (रज़ि.) ने कहा कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने तो यह फ़रमाया था कि अचानक आने वाली मृत्यु ईमान वाले व्यक्ति के लिए आसानी का कारण होती है, जबकि इनकार करने वालों के लिए यह अल्लाह की नाराज़गी की निशानी होती है। (*अल-मोजम अल-अवसत*, अल-तबरानी, हदीस संख्या 3129)

यह केवल हज़रत आयशा (रज़ि.) और एक बयान करने वाले के बीच का संवाद नहीं है, बल्कि इससे एक सिद्धांत सामने आता है। वह यह कि इस्लाम में औरत और मर्द के बीच दर्जे के आधार पर कोई अंतर नहीं है। यदि कोई औरत अपने आपको ज्ञान और समझ के लिहाज़ से तैयार करे, तो वह मामलों में मर्दों का मार्गदर्शन कर सकती है। वह जीवन में नेतृत्व की भूमिका निभा सकती है। ऐसी औरत वैवाहिक जीवन में अपने जीवन साथी के लिए एक पूँजी (asset) है। (*अल-रिसाला*, दिसंबर 2016)

हदीसों का स्पष्टीकरण

रसूलुल्लाह (सल्ल०) की पत्नियों में हज़रत आयशा (रज़ि.) सबसे अधिक बुद्धिमान थीं। उनसे संबंधित हदीसों की कुल संख्या 2210 मानी जाती है। उनसे लगभग एक सौ सहाबा और ताबिईन (सहाबा के साथी) ने रिवायत की है। उरवा बिन ज़ुबैर, सईद बिन मुसय्यब, अब्दुल्लाह बिन आमिर, मसरूक़ बिन अजदअ, इकरिमा और अलक़मा जैसे लोग आपके शागिर्दों में शामिल हैं। हज़रत आयशा (रज़ि.) इस्लामी शिक्षाओं और धार्मिक मामलों की बहुत गहरी समझ रखती थीं। जब वे कोई हदीस बयान करती थीं, तो उसके पीछे का कारण और उसकी गहरी समझ भी स्पष्ट कर देती थीं।

(*अल-रिसाला*, मार्च 1977)

हज़रत आयशा का एक विशेष योगदान यह है कि उन्होंने अनेक ऐसे कथनों और हदीसों की सही व्याख्या की, जो पैग़म्बरे इस्लाम की बात को पूरी तरह सही रूप में प्रस्तुत नहीं कर रहे थे। पैग़म्बरे इस्लाम से जो हदीसें मिलती हैं, उनमें से अधिकांश आपकी सभा और बातचीत के अवसरों से संबंधित हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसा होता था कि कोई सहाबी बातचीत के बीच में शामिल हो जाता और उसने पैग़म्बर की बात का कुछ हिस्सा सुना होता और कुछ हिस्सा न सुना होता।

इसी प्रकार, कभी किसी सहाबी ने पैग़म्बरे इस्लाम की कोई बात तो सुन ली, लेकिन वह उस परिस्थिति या पृष्ठभूमि (background) से परिचित नहीं था, जिसमें वह बात कही गई थी। ऐसे मामलों में हज़रत आयशा ने सही संदर्भ को स्पष्ट किया और लोगों को उस बात का सही अर्थ समझाया।

ऐसे विभिन्न कारणों से कुछ सहाबा द्वारा बयान की गई बातों में पूरी स्पष्टता नहीं आ सकी। इसलिए उनके बयान से पैग़म्बरे इस्लाम का उद्देश्य अपने पूरे और सही अर्थ के साथ स्पष्ट नहीं हो सका। यह काम आयशा सिद्दीक़ा

ने किया। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की पत्नी होने की वजह से उन्हें हर दिन आपकी संगत मिलती थी। रसूलुल्लाह (सल्ल०) की पत्नी होने के कारण हज़रत आयशा (रज़ि.) को आपकी बातों और कार्यों को अधिक विस्तार और गहराई से समझने का अवसर मिला था। इसी विशेष स्थिति के कारण उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य किया। जिन कथनों या हदीसों में पैग़म्बरे इस्लाम की बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाई थी, उन्हें उन्होंने सही संदर्भ और सही अर्थ के साथ प्रस्तुत किया। हदीस के विद्वानों की भाषा में इस प्रकार से सही अर्थ स्पष्ट करने को 'इस्तिदराक' कहा जाता है। इस विषय को समझने के लिए यहाँ इस प्रकार की कुछ मिसालें दी जाती हैं:

1. सहीह अल-बुख़ारी की एक रिवायत में अब्दुल्लाह बिन उमर कहते हैं कि उन्होंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना: "तुम में से जो व्यक्ति जुमे की नमाज़ के लिए आए, उसे नहाना चाहिए।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 894)

अब्दुल्लाह बिन उमर ने इस हदीस को सामान्य तौर पर सबके लिए बयान किया है। इससे ऐसा लगता है कि जुमे के दिन नहाना हर व्यक्ति के लिए एक अनिवार्य आदेश है। लेकिन जब यही हदीस आयशा सिद्दीक़ा ने बयान की, तो उन्होंने इसके पीछे का कारण भी बताया। यह बात उन्हें रसूलुल्लाह (सल्ल०) की निकट संगति से मालूम हुई। आयशा सिद्दीक़ा बयान करती हैं कि लोग जुमे के दिन अपने घरों और मदीना के आसपास की बस्तियों से आते थे। सफ़र की वजह से उनके शरीर पर धूल होती थी और उन्हें पसीना भी आता था। एक बार ऐसा ही एक व्यक्ति रसूलुल्लाह (सल्ल०) के पास आया, जबकि आप मेरे घर में थे। तब रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने उससे फ़रमाया, "अच्छा होता कि तुम इस दिन नहा लेते।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 902)

अब्दुल्लाह बिन उमर की रिवायत में रसूलुल्लाह (सल्ल०) की बात सामान्य रूप से बयान की गई है। इससे यह समझा जा सकता है कि जुमे के लिए ग़ुस्ल

करना नमाज़ का अनिवार्य हिस्सा है। लेकिन आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने इस कथन का सही संदर्भ स्पष्ट कर दिया। इससे मालूम होता है कि ग़ुस्ल का निर्देश स्वच्छता और शारीरिक आवश्यकता के लिए था, न कि नमाज़ की इबादत का कोई अनिवार्य हिस्सा।

2. अब्दुल्लाह बिन अब्बास, अब्दुल्लाह बिन उमर और कुछ सहाबा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया: मरने वाले पर उसके घरवालों के रोने की वजह से अज़ाब होता है। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1286)

जब यह रिवायत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) के सामने बयान की गई, तो उन्होंने कहा कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने ऐसा नहीं फ़रमाया। वास्तविक घटना यह है कि एक दिन आप एक ग़ैर-मुस्लिम औरत के जनाज़े के पास से गुज़रे। उसके रिश्तेदार उस पर रो रहे थे। तब आपने फ़रमाया कि ये लोग रो रहे हैं, जबकि उस औरत पर अज़ाब हो रहा है। (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 932)

आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) का कहना यह है कि रोना अज़ाब का कारण नहीं है, बल्कि दोनों बातें एक-दूसरे से अलग हैं। अर्थात, रोने वाले उसकी मृत्यु पर रो रहे हैं, जबकि मरने वाला अपने पिछले कर्मों की सज़ा भोग रहा है। रोना तो जीवित लोगों का अपना कार्य है, और उसके परिणाम के लिए वे स्वयं ज़िम्मेदार हैं। मरने वाले को उसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। हर व्यक्ति अपने कर्मों का स्वयं जवाबदेह होता है।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) के इस कथन के बारे में आयशा (रज़ि.) की यह व्याख्या बताती है कि इस प्रकार के मामलों में पैग़म्बर (सल्ल०) और हज़रत आयशा के बीच नियमित रूप से बातचीत होती थी। इस बातचीत के दौरान आयशा (रज़ि.) पर वे बातें स्पष्ट हो जाती थीं, जिनसे सामान्य लोग अनजान रहते थे।

3. ग़ज़वा-ए-बद्र में जो लोग इस्लाम के विरोध में लड़ते हुए मारे गए थे, उनके दफ़न स्थान पर खड़े होकर रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया: “क्या तुमने अपने रब के उस वादे को सच पाया, जो तुमसे किया गया था?” (7:44)

सहाबा ने पूछा, “ऐ अल्लाह के रसूल, क्या आप मुर्दों को पुकार रहे हैं?” इस पर इब्न उमर (रज़ि.) की रिवायत के अनुसार, जिसे अबू तल्हा (रज़ि.) ने बयान किया है, आपने फ़रमाया: “तुम उनसे अधिक सुनने वाले नहीं हो, फर्क सिर्फ इतना है कि वे जवाब नहीं दे सकते।” (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1370)

जब यह रिवायत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) के सामने बयान की गई, तो उन्होंने कहा कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने ऐसा नहीं कहा, बल्कि आपने यह फ़रमाया: अब वे जान गए हैं कि मैं उनसे जो कुछ कहता था, वह सत्य था। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1371)

आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) ने जो बात कही, वह गहरे दीनी ज्ञान के आधार पर कही। उन्हें यह असाधारण दीनी समझ कहाँ से मिली? इसका निश्चित उत्तर केवल एक है, और वह यह कि यह दीनी समझ उन्हें रसूलुल्लाह (सल्ल०) से निकट संगत के माध्यम से प्राप्त हुई।

4. बनू आमिर क़बीले के दो व्यक्ति आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) के पास आए। उन्होंने कहा कि अबू हुरैरा (रज़ि.) यह हदीस बयान करते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया: “मनहूसियत तीन चीज़ों में होती है—घर, औरत और घोड़े में।” यह सुनकर आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि.) बहुत अधिक नाराज़ हो गईं। उन्होंने कहा, “उस अल्लाह की कसम, जिसने मुहम्मद पर क़ुरआन उतारा, रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने हरगिज़ ऐसा नहीं कहा। आपने तो यह बताया था कि जाहिलियत के लोग घर, औरत और घोड़े को मनहूस समझते थे।” (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 26034)

एक दूसरी रिवायत में है कि हज़रत आयशा (रज़ि.) ने कहा: रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने वास्तव में यह फ़रमाया था कि यहूदी कहते हैं कि मनहूसियत तीन चीज़ों में है—औरत में, घोड़े में और घर में। (*मुस्नद अबू दाऊद अत-तयालसी*, हदीस संख्या 1641; *मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 25168)

संभवतः रावी ने अपनी सादगी के कारण रसूलुल्लाह (सल्ल०) की बात को पूरी तरह से नहीं समझा। आपने जो बात जाहिलियत के लोगों के बारे में कही थी, उसे उन्होंने स्वयं रसूलुल्लाह (सल्ल०) की ओर जोड़ दिया। लेकिन आयशा सिद्दीक़ा दीन के स्वभाव को अपनी असाधारण बुद्धिमत्ता और रसूलुल्लाह (सल्ल०) की लगातार संगति की वजह से अच्छी तरह समझ चुकी थीं। इसलिए उन्हें असल बात समझने में देर नहीं लगी। उन्होंने रावी की बात सुनते ही अपनी दीनी समझ के आधार पर इस हक़ीक़त को समझ लिया और तुरंत उसका खंडन करके सही बात बयान कर दी।

हज़रत आयशा की यह व्याख्या बहुत महत्वपूर्ण है। यदि उन्होंने यह स्पष्टता न दी होती, तो अबू हुरैरा की रिवायत के कारण इस मामले में हमेशा के लिए एक उलझन बनी रहती, जिसे शायद कोई दूसरा व्यक्ति दूर नहीं कर पाता।

5. अब्दुल्लाह बिन अब्बास की रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने अल्लाह को दो बार देखा। एक बार मेराज के अवसर पर और दूसरी बार उस अवसर पर जिसका उल्लेख सूरह अन-नज्म में आया है। ताबिई मस्रूक ने इस बारे में आयशा सिद्दीक़ा से पूछा, “ऐ उम्मुल मोमिनीन, क्या रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने अल्लाह को देखा था?” आयशा सिद्दीक़ा ने कहा, “तुमने ऐसी बात कही है कि उसे सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। जो तुमसे यह कहे कि मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने रब को देखा, वह झूठ कहता है फिर उन्होंने यह आयत पढ़ी: “निगाहें उसे नहीं पा सकतीं, जबकि वह निगाहों को पा लेता है। और वही अत्यंत सूक्ष्म जानने वाला, पूरी खबर रखने वाला है।” (6:103)

इसके बाद आयशा ने यह दूसरी आयत पढ़ी: (42:51) "किसी इंसान के लिए यह संभव नहीं कि अल्लाह उससे बात करे, सिवाय वह्य (अल्लाह का संदेश) के माध्यम से या पर्दे के पीछे से।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 4855)

आयशा सिद्दीक़ा ने इस मामले में जो स्पष्टता दी, उसके लिए असाधारण दीनी साहस की आवश्यकता थी। ऐसा साहस उसी व्यक्ति में हो सकता है, जिसने लंबे समय तक रसूलुल्लाह (सल्ल०) की संगति पाई हो और ऐसे विषयों में उनसे विचार-विमर्श करके दीन की गहरी समझ हासिल की हो।

6. जब अबू सईद ख़ुदरी का अंतिम समय आया, तो उन्होंने नए कपड़े मंगवाकर पहन लिए। उन्होंने इसका कारण यह बताया कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि मुसलमान जिस वस्त्र में मरता है, उसी में उठाया जाएगा। जब यह बात आयशा सिद्दीक़ा तक पहुँची तो उन्होंने कहा, "अल्लाह अबू सईद पर दया करे। वस्त्र से रसूलुल्लाह (सल्ल०) का उद्देश्य इंसान के कर्म थे। वरना आपका तो यह स्पष्ट फ़रमान है कि लोग क़यामत के दिन नंगे शरीर, नंगे पाँव और बिना सिर ढके उठाए जाएँगे।" (*ऐनुल-इसाबह*, अस-सुयूती, पृष्ठ 49)

आयशा सिद्दीक़ा की इस व्याख्या से यह बात स्पष्ट होती है कि हदीस को समझने के लिए कभी-कभी उसके शब्दों के शाब्दिक अर्थ के बजाय उसके सांकेतिक अर्थ को समझना आवश्यक होता है।

7. एक बार रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने आदेश दिया कि क़ुरबानी का गोश्त 3 दिन से अधिक न रखा जाए। कुछ सहाबा ने इसके बाहरी शब्दों के आधार पर इसे स्थायी आदेश समझ लिया। आयशा सिद्दीक़ा ने इसकी वजह बताते हुए कहा कि यह उस समय के लिए एक विशेष आदेश था।

> एक व्यक्ति ने उनसे पूछा, "क्या तीन दिन के बाद क़ुरबानी का गोश्त खाना रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने हराम कर दिया था?" उन्होंने उत्तर दिया: "नहीं। उस समय बहुत कम लोग क़ुरबानी कर सकते थे। इसलिए आपने यह आदेश दिया था, ताकि जो लोग क़ुरबानी करें, वे उन लोगों को भी खिलाएँ जिन्होंने क़ुरबानी नहीं की।" (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 24707)

आयशा सिद्दीक़ा के इस सुधार से यह भी स्पष्ट होता है कि आज के समय में आधुनिक तरीकों से क़ुरबानी के गोश्त को लंबे समय तक सुरक्षित रखना उचित है। वर्तमान समय के संदर्भ में यह स्पष्टता अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि आयशा सिद्दीक़ा की यह व्याख्या उपलब्ध न होती, तो इस हदीस की गहरी समझ संभव न होती और क़ुरबानी के गोश्त को सुरक्षित रखकर बाद में उपयोग करना लोगों को इस्लाम की शिक्षा के विरुद्ध प्रतीत होता।

इन कुछ उदाहरणों से अनुमान होता है कि इस्लाम में आयशा सिद्दीक़ा का योगदान कितना महान है। वास्तव में, इस्लाम की वास्तविक भावना को समझने के लिए आयशा की रिवायतों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके माध्यम से बाद की पीढ़ियों को जो सबसे बड़ी चीज़ मिली, वह यह है कि उन्होंने अपनी असाधारण बुद्धिमत्ता और अपना पूरा जीवन इस्लाम के लिए समर्पित कर देने के परिणामस्वरूप दीन की गहरी समझ हासिल की। दीन की इस गहरी समझ में शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति उनके बराबर था। फिर इसी दीनी समझ के साथ उन्होंने लगभग पचास वर्षों तक मुसलमानों का मार्गदर्शन किया। इसके बाद भी उनकी रिवायतों, शिक्षाओं और ज्ञान के माध्यम से लोगों का मार्गदर्शन होता रहा है, और यह सिलसिला क़यामत तक चलता रहेगा।

वास्तव में दीन की दो परतें हैं। एक उसका बाहरी रूप है और दूसरी उसकी गहरी समझ और अल्लाह की पहचान (*मारिफ़त*) की परत। जो लोग दीन को

केवल उसके बाहरी रूप तक सीमित रखते हैं, उनकी स्थिति उस व्यक्ति जैसी है जो किसी फल का केवल छिलका ही पाता है। इसके विपरीत, जो स्त्री या पुरुष दीन को उसके गहरे अर्थ और वास्तविकता के स्तर पर समझते हैं, वे मानो फल के गूदे तक पहुँच जाते हैं। वास्तव में दीन का वास्तविक सार वही लोग प्राप्त करते हैं।

हज़रत आयशा ने अल्लाह के दीन को उसकी गहराई और वास्तविक भावना के साथ समझा। इसी कारण वे स्वयं एक उच्च आध्यात्मिक और अल्लाह-समर्पित व्यक्तित्व बनीं। साथ ही, उन्होंने अपने जीवन के माध्यम से यह भी दिखाया कि कोई भी स्त्री या पुरुष दीन की गहरी समझ और अल्लाह की पहचान (मारिफ़त) के इस ऊँचे स्तर तक कैसे पहुँच सकता है।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) की प्रारंभिक युवावस्था में आपका निकाह हज़रत ख़दीजा से हुआ, जो उम्र में आपसे पंद्रह वर्ष बड़ी थीं। और आपकी आयु के अंतिम चरण में आपका निकाह आयशा से हुआ, जो उम्र में आपसे बहुत छोटी थीं। ये दोनों ही अत्यंत महत्वपूर्ण थीं। क्योंकि रसूलुल्लाह (सल्ल०) के जीवन के प्रारंभिक चरण में आपको एक अनुभवी महिला की आवश्यकता थी, जबकि जीवन के अंतिम चरण में आयशा जैसी एक कम आयु की महिला की आवश्यकता थी।

(*औरत: मेमारे इंसानियत*)

निकाह की उम्र का मामला

आयशा सिद्दीक़ा के बारे में एक प्रश्न उनकी निकाह की उम्र से संबंधित है। हदीस की किताबों में प्रामाणिक रिवायतों में यह बात आई है कि आयशा सिद्दीक़ा का निकाह पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) से मक्का में हुआ। उस समय

आयशा सिद्दीक़ा की उम्र केवल छह वर्ष थी। इसके बाद मदीना में उनकी रुख़्सती हुई, और रुख़्सती के समय उनकी उम्र नौ वर्ष थी। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 5133)

वर्तमान समय में इस विषय पर बहुत कुछ लिखा गया है। मुस्तशरिक़ीन (पश्चिमी इस्लाम-शोधकर्ताओं) ने उम्र के इस मामले को लेकर पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के उच्च चरित्र पर प्रश्न उठाए हैं। उनका कहना है कि कम उम्र की लड़की से निकाह करना अच्छे नैतिक आचरण के विरुद्ध है, और इस प्रकार का कार्य किसी की पैग़म्बरी पर संदेह उत्पन्न करता है।

यह प्रश्न पुराने समय में भी पूछा जाता था, लेकिन उस समय यह मुद्दा आज की तरह चर्चा का विषय नहीं था। लोग इसे नैतिकता के बजाय फ़िक़्ह (इस्लामी कानून) के दृष्टिकोण से देखते थे। वे पूछते थे कि क्या अधिक उम्र का व्यक्ति कम उम्र की लड़की से निकाह कर सकता है। उस समय के विद्वानों ने इसका उत्तर अपनी परंपरागत समझ के अनुसार दिया। उदाहरण के लिए, इब्न हज़्म ने इब्न शुबरमा की यह राय लिखी है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) का हज़रत आयशा (रज़ि.) से छह वर्ष की उम्र में निकाह करना केवल पैग़म्बर के लिए एक विशेष अनुमति थी। (*फ़त्हुल-बारी*, खण्ड 9, पृष्ठ 190)

यह व्याख्या तर्कसंगत नहीं है। क्योंकि नबी की विशेषताएँ उनके अल्लाह के पैग़म्बर होने के कारण होती हैं, किसी अन्य कारण से नहीं। इसी कारण किसी दूसरे पैग़म्बर के जीवन में इस प्रकार के निकाह का कोई प्रमाण नहीं मिलता। वर्तमान समय में विद्वानों ने इस प्रश्न का विभिन्न प्रकार से उत्तर देने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए, मौलाना सैयद सुलैमान नदवी अपनी पुस्तक में लिखते हैं:

> "हज़रत आयशा (रज़ि.) की आयु निकाह के समय छह वर्ष थी। इस कम आयु में निकाह का मुख्य उद्देश्य रसूलुल्लाह

> (सल्ल०) और हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) के परिवारों के बीच संबंधों को और अधिक मज़बूत बनाना था। इसके अलावा, अरब की गर्म जलवायु में लड़कियों का शारीरिक विकास सामान्य से अधिक जल्दी होना भी एक स्वाभाविक बात है।

दूसरे, सामान्य अनुभव यह है कि जैसे असाधारण व्यक्तियों की बुद्धि और मानसिक क्षमताएँ जल्दी विकसित होती हैं, वैसे ही उनके शारीरिक विकास में भी विशेष गति होती है। इसे अंग्रेज़ी में प्रीकॉशस (precocious) कहा जाता है।" (*सीरत-ए-आयशा*, सैयद सुलैमान नदवी, दारुल मुसन्निफ़ीन, आज़मगढ़, पृष्ठ 24)

सैयद सुलैमान नदवी की पुस्तक में इस शब्द को "प्री कॉन्शस" लिखा गया है। पुस्तक में इसकी अंग्रेज़ी वर्तनी नहीं दी गई है। मेरे विचार में, संभवतः लेखक का आशय "प्री कॉन्शस" नहीं, बल्कि Precocious शब्द से है। Precocious का अर्थ है—सामान्य या स्वाभाविक समय से पहले विकसित हो जाना।

> Precocious: Ripe before the proper or natural time, premature, developed or matured earlier than usual. (Webster)
>
> (of a child) having developed particular abilities and ways of behaving at a much younger age than usual; sexually precocious. (Oxford)

यद्यपि हदीस या इतिहास से यह सिद्ध नहीं होता कि आयशा सिद्दीक़ा का मामला समय से पहले शारीरिक विकास का था। इस संबंध में यह केवल एक अनुमान है। फिर भी मूल प्रश्न के संदर्भ में यह उत्तर उपयुक्त नहीं है। असल सवाल यह है कि सही रिवायतों में साफ़ तौर पर बताया गया है कि निकाह छह वर्ष की आयु में हुआ और रुख़्सती नौ वर्ष की आयु में। उस समय रसूलुल्लाह

(सल्ल०) की आयु पचास वर्ष से अधिक थी। इसलिए असली चर्चा दोनों की आयु के इस बड़े अंतर पर है, न कि कम उम्र में शारीरिक विकास होने पर।

इसी प्रकार कुछ लोगों का कहना है:

> "अरबों में विवाह से पहले केवल संबंध तय कर लेने की प्रथा थी। हमारे यहाँ इसे मंगनी या रिश्ता तय करना कहते हैं। क़ुरआन में केवल निकाह का उल्लेख है, मंगनी का नहीं। इसलिए रिवायतों में जो कहा गया है कि आयशा का निकाह छह वर्ष की आयु में हुआ और रुख़्सती नौ वर्ष की आयु में हुई, वहाँ निकाह से आशय अरब समाज की परंपरा के अनुसार केवल रिश्ता तय होना (मंगनी) है, और रुख़्सती से आशय वास्तविक विवाह है।" (ग़ुलाम अहमद परवेज़, ताहिरा के नाम ख़त, *आयशा की उम्र*, पृष्ठ 1–2)

यह व्याख्या भी सही नहीं मानी जा सकती। हदीसों में जहाँ 'निकाह' शब्द आया है, उसे उसके सामान्य और प्रचलित अर्थ में ही समझना चाहिए। यदि उसका कोई दूसरा अर्थ लिया जाए, तो उसका प्रमाण हदीस के शब्दों में होना आवश्यक है, जबकि ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसके अलावा, इस व्याख्या से मूल आपत्ति भी दूर नहीं होती। क्योंकि निकाह की आयु छह वर्ष मानी जाए या नौ वर्ष, दोनों ही स्थितियों में आयु बहुत कम थी। इसलिए यह व्याख्या मूल प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं देती।

इसी प्रकार कुछ लोग एक और बात कहते हैं। उनका कहना है कि आयशा सिद्दीक़ा ने कुछ सहाबा की रिवायतों पर टिप्पणी करते हुए कहा था:

> "मैं यह नहीं कहती कि ये लोग झूठ बोलते हैं, लेकिन कभी-कभी कान सुनने में गलती कर जाते हैं।"

बुख़ारी और मुस्लिम में इस प्रकार की अनेक टिप्पणियाँ मिलती हैं। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि कभी-कभी रावी (वर्णनकर्ता) पूरी तरह विश्वसनीय होने के बावजूद भी उसकी बयान की हुई रिवायत में गलती हो सकती है।

कभी इसकी वजह यह होती है कि रावी ने अधूरी बात सुनी होती है। कभी-कभी रावी बात का मतलब गलत समझ बैठता है, और कभी-कभी उससे भूल हो जाती है। हम भी उम्मुल मोमिनीन के कथन के अनुसार यही कहते हैं कि रावी से सुनने में गलती हुई। वाक्य बोला गया था तिस्अ अशर (उन्नीस), लेकिन रावी ने केवल तिस्अ (नौ) शब्द सुना, और इस तरह यह कहानी बन गई कि कभी-कभी कान सुनने में गलती कर जाते हैं। (*उम्रे आयशा*, हबीबुर्रहमान सिद्दीक़ी क़ांधलवी, कराची, अक्टूबर 1994, पृष्ठ 8–9)

यह अनुमान भी सही नहीं है। आयशा सिद्दीक़ा का यह सिद्धांत केवल वहाँ लागू होगा, जहाँ हदीस बयान करने वाले और उसका सुधार करने वाले दोनों ने वह बात खुद सुनी हो। एक सुनने वाला दूसरे सुनने वाले के बारे में कह सकता है कि उससे सुनने में गलती हुई है, जबकि मैंने सही बात सुनी थी और वह ऐसे थी। लेकिन जो व्यक्ति उस बात को सुनने वालों में शामिल ही नहीं था, उसे केवल अनुमान के आधार पर सुधार करने का अधिकार नहीं है। ऐसा तर्क बिल्कुल उचित नहीं है। यदि इस तरह के अनुमान को सही मान लिया जाए, तो कोई भी व्यक्ति अपने अनुमान के आधार पर ऐसी बातें कह सकता है जो पूरे दीन की ही सही समझ को बिगाड़ दें।

वास्तविकता यह है कि इस विषय में चर्चा का सही आरंभ यह नहीं है कि कम उम्र की लड़की का विवाह अधिक उम्र के व्यक्ति से क्यों हुआ। बल्कि सही आरंभ यह है कि यह समझने की कोशिश की जाए कि आयशा सिद्दीक़ा इस्लामी इतिहास की एक असाधारण (अद्वितीय) शख्सियत क्यों बन गईं। इस विषय में पहले तथ्य को दूसरे तथ्य के संदर्भ में समझा जाएगा, न कि इसके विपरीत। यह एक स्थापित सत्य है कि पूरे मुस्लिम इतिहास में आयशा सिद्दीक़ा ने अपने योगदान के कारण एक विशिष्ट और महान स्थान पाया। उन्होंने दीन-ए-इस्लाम की गहराई को जितना समझा, उतना किसी दूसरे पुरुष या महिला ने नहीं समझा। दीन के सूक्ष्म पहलुओं की व्याख्या उन्होंने जिस

विश्वास के साथ की, वैसा विश्वास किसी और में दिखाई नहीं देता। उन्होंने दीन की हिकमतों और गहरे अर्थों को जिस प्रकार स्पष्ट किया, उस प्रकार न तो सहाबा के दौर में करने वाला कोई दिखाई देता है और न ही उसके बाद। इसी प्रश्न के उत्तर में इस पूरे विषय का वास्तविक उत्तर छिपा हुआ है।

असल बात यह है कि दीन में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ मारिफ़त (अल्लाह की गहरी पहचान) और दीन की समझ है। यह दोनों चीजें पैग़ंबर को सबसे पूर्ण रूप में प्राप्त होती है। पैग़ंबर को यह ज्ञान फ़रिश्ता जिब्रील के माध्यम से सीधे अल्लाह की ओर से मिलता है। अब सवाल यह है कि पैग़ंबर के बाद इन दोनों चीज़ों का ज्ञान लोगों तक कैसे पहुँचे। इसी उद्देश्य के लिए आयशा सिद्दीक़ा को चुना गया। इसके लिए ज़रूरी था कि उन्हें बचपन से ही पैग़ंबर की निकट संगति प्राप्त हो। क्योंकि इस तरह की गहरी और व्यापक समझ तभी संभव थी, जब पैग़ंबर के साथ लगातार और निकट संबंध हो। किसी व्यक्ति के साथ ऐसी पूर्ण संगति का अवसर सामान्यतः उसकी पत्नी को ही मिल सकता है, किसी और को नहीं।

मनोविज्ञान का अध्ययन बताता है कि बच्चा अपनी प्रारंभिक आयु में बहुत अधिक जिज्ञासु (जानने की तीव्र इच्छा रखने वाला) होता है। वह अपने आसपास की हर बात जानना चाहता है। साथ ही, इस आयु में उसकी समझने और सीखने की क्षमता बहुत अधिक होती है। वह नई-नई बातों को तुरंत ग्रहण कर लेता है। अध्ययनों से यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रारंभिक आयु में हर पुरुष और महिला की स्मरण-शक्ति बहुत प्रबल होती है। इस आयु में सीखी हुई बातें जीवन भर याद रहती हैं। बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा (स्कूलिंग) का सिद्धांत भी इसी आधार पर बना है।

हज़रत आयशा अत्यंत बुद्धिमान थीं। उन्हें बहुत ग्रहणशील (तेज़ी से सीखने वाली) प्रकृति मिली थी। इसलिए अल्लाह की योजना थी उन्हें कम आयु में ही पैग़ंबर की निरंतर संगति में रखा जाए। और इस निरंतर संगति का व्यावहारिक रूप केवल यही हो सकता था कि वे आपकी पत्नी बनकर आपके साथ जीवन

बिताएँ। इसी विशेष योजना के अंतर्गत आयशा सिद्दीक़ा का विवाह कम आयु में पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) से कर दिया गया।

यह विवाह देखने में सामान्य प्रथा से अलग था। यह उस समय के प्रचलित तरीकों के अनुसार नहीं था। इसलिए संभव था कि पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) स्वयं इसे स्वीकार न करते। यहाँ तक कि यह भी संभव था कि वे इस प्रस्ताव पर विचार ही न करते। संभवतः इसी नाज़ुक परिस्थिति के कारण अल्लाह का फ़रिश्ता आपके पास आया और इस असाधारण विवाह के बारे में पहले ही आपको सूचना दी, ताकि इस विषय में आपके मन में कोई संकोच न रहे। यह लगभग उसी प्रकार का मामला था जैसा इससे पहले मरयम के साथ हुआ था। मरयम के लिए यह बात अत्यंत असाधारण थी कि उनके यहाँ बिना पिता के एक बच्चा जन्म ले। इसलिए अल्लाह ने पहले ही उनके पास एक फ़रिश्ता भेजा। उसने मनुष्य का रूप धारण करके मरयम को इस विषय की सूचना दी। इसका उल्लेख क़ुरआन में स्पष्ट शब्दों में आया है (मरयम, 19:17–19)।

इस संबंध में फ़रिश्ते द्वारा पहले से सूचना दिया जाना सही रिवायतों से साबित है। रिवायतों में आता है कि आयशा सिद्दीक़ा कहती हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने मुझसे कहा: “मुझे ख़्वाब में तुम्हें दिखाया गया। एक फ़रिश्ता तुम्हें रेशम के कपड़े में लपेटकर मेरे पास लाया। उसने कहा: ‘यह आपकी पत्नी है।’ मैंने तुम्हारे चेहरे से कपड़ा हटाया तो देखा कि वह तुम हो। तब मैंने कहा: ‘यदि यह अल्लाह की ओर से है, तो वह इसे पूरा करके रहेगा।”(*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 5125)।

आयशा सिद्दीक़ा पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) के साथ ग्यारह वर्ष तक रहीं। चूँकि उनकी आयु आपसे बहुत कम थी, इसलिए पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) के देहांत के बाद वे लगभग पचास वर्ष तक जीवित रहीं। आपके देहांत के बाद लगभग आधी सदी तक वे इल्मे नुबुव्वत (नुबुव्वत का ज्ञान) के प्रसार का माध्यम बनी

रहीं। घटनाओं से पता चलता है कि आयशा सिद्दीक़ा ने दीन की ऐसी गहरी हिकमतें (गहरी समझ) बताईं, जो किसी दूसरे सहाबी के माध्यम से उम्मत को प्राप्त नहीं हो सकीं। इसके अलावा, पैग़ंबर की निरंतर संगति के कारण उन्हें दीन की अपनी समझ की सत्यता पर असाधारण विश्वास प्राप्त था। यही कारण था कि वे दीन के नाज़ुक मामलों में जिस दृढ़ता के साथ बोलती थीं, वैसी दृढ़ता से न उनसे पहले कोई बोल सका और न आज कोई बोल सकता है।

उदाहरण के लिए, कभी-कभी लोग श्रद्धा के कारण कोई ऐसी धारणा बना लेते हैं जो वास्तविकता के अनुरूप नहीं होती। फिर जब ऐसी बातें फैल जाती हैं, तो सामान्य व्यक्ति में उनका खंडन करने का साहस नहीं होता। ऐसे अवसर पर असाधारण समझ की आवश्यकता होती है। केवल गहरी समझ वाला व्यक्ति ही निश्चित रूप से सही बात कहने का साहस कर सकता है। आयशा सिद्दीक़ा को पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) की निरंतर संगति से यही गहरी समझ प्राप्त हुई थी। इसी कारण वे पूर्ण विश्वास के साथ निर्णय ले सकती थीं। उदाहरण के लिए, रसूलुल्लाह (सल्ल०) के देहांत के बाद ताबिईन (जिन्होंने पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) के साथियों को देखा और उनसे शिक्षा प्राप्त की) के दौर में यह कहा जाने लगा कि पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) ने अल्लाह को अपनी आँखों से देखा था। आयशा सिद्दीक़ा ने इसका खंडन करते हुए कहा कि जो व्यक्ति ऐसा कहे, उसने झूट कहा। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 4855)

इसी तरह, रसूलुल्लाह (सल्ल०) के देहांत के बाद एक समय ऐसा आया जब क़ुरआन को पूरा पढ़ने की परंपरा बहुत आम हो गई। लोग क़ुरआन के अर्थ और संदेश पर गहराई से सोचने के बजाय, सिर्फ़ उसे पूरा पढ़ लेने को अधिक महत्व देने लगे। इसके लिए भी बहुत अधिक सवाब बताए जाने लगे। जब आयशा सिद्दीक़ा को पता चला कि कुछ लोग एक ही दिन में कई बार पूरा क़ुरआन पढ़ लेते हैं, तो उन्होंने इस तरीक़े को नापसंद करते हुए कहा कि इन लोगों ने शब्द तो पढ़े हैं, लेकिन वास्तव में क़ुरआन नहीं पढ़ा। (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 24609)

रसूलुल्लाह (सल्ल०) की पत्नी होने के कारण लोग ऐसे नाज़ुक मामलों में आयशा सिद्दीक़ा की बात पर विश्वास कर सकते थे। यदि कोई दूसरा व्यक्ति ऐसी बात कहता, तो लोगों के लिए उस पर विश्वास करना कठिन होता।

एक रिवायत में यूसुफ़ बिन माहक कहते हैं कि मैं उम्मुल मोमिनीन आयशा के पास बैठा था। तभी एक इराक़ी व्यक्ति आया। उसने पूछा, "सबसे अच्छा कफ़न कौन-सा है?" आयशा सिद्दीक़ा ने कहा, "तुम पर अफ़सोस है! इससे तुम्हें क्या फ़र्क़ पड़ता है?" फिर उसने कहा, "ऐ उम्मुल मोमिनीन! मुझे अपना मुसहफ़ (क़ुरआन) दिखाइए।" उन्होंने पूछा, "क्यों?" उसने कहा, "ताकि मैं उसी के अनुसार एक क़ुरआन तैयार करूँ, क्योंकि लोग उसे अलग-अलग क्रम से पढ़ते हैं।" आयशा ने कहा, "इससे तुम्हें क्या नुक़सान है, जिस तरह तुम पहले पढ़ते थे वैसे ही पढ़ो?" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 4993)

इस बातचीत में आयशा सिद्दीक़ा ने जिस विश्वास और स्पष्टता के साथ इस्लाम की मूल भावना को बताया, वह बहुत महत्वपूर्ण है। उनके लिए इस तरह पूरे विश्वास और स्पष्टता के साथ बोलना केवल इसलिए संभव हुआ, क्योंकि वे पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) की निकट संगति में रहकर इस्लाम की मूल भावना को पूरी तरह समझ चुकी थीं। वे बिना किसी संदेह के जानती थीं कि इस मामले में इस्लाम की हक़ीक़ी मांग क्या है।

आयशा सिद्दीक़ा की बौद्धिक क्षमता, गहरी समझ और सूक्ष्म दृष्टि के ऐसे कई अन्य उदाहरण इस पुस्तक के आगे के अध्यायों में भी मिलेंगे। इन उदाहरणों से यह समझने में मदद मिलती है कि इस विषय पर चर्चा करते समय केवल विवाह की आयु पर ध्यान केंद्रित करना पूरी तस्वीर को नहीं दिखाता। अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इस संबंध ने आयशा को ऐसी विशिष्ट शिक्षा, निकट मार्गदर्शन और व्यक्तित्व-निर्माण का अवसर प्रदान किया, जो उस समय किसी अन्य माध्यम से संभव नहीं था। इसी संदर्भ को ध्यान में रखकर इस घटना को समझना अधिक उचित होगा।

(*औरत: मेमारे इंसानियत*)

हज़रत आयशा का निकाह

पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) का पहला विवाह हज़रत ख़दीजा से हुआ। ख़दीजा मक्का के समाज में एक सम्मानित और प्रभावशाली व्यक्तित्व रखती थीं। इस विवाह के परिणामस्वरूप पैग़ंबर को मक्का में एक मज़बूत सामाजिक समर्थन प्राप्त हुआ। लगभग पच्चीस वर्षों तक यह समर्थन उनके साथ रहा। चूँकि वे एक महत्वपूर्ण धार्मिक और सामाजिक मिशन का नेतृत्व कर रहे थे, इसलिए अपने कार्य को प्रभावी ढंग से आगे बढ़ाने के लिए ऐसा सामाजिक आधार उनके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था।

हज़रत ख़दीजा के देहांत के बाद पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) का दूसरा निकाह हज़रत आयशा सिद्दीक़ा से हुआ। यह निकाह मक्का के अंतिम दौर में हुआ और हिजरत के बाद मदीना में उनकी रुख़्सती हुई। उस समय आयशा सिद्दीक़ा की आयु 9 वर्ष थी और पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) की आयु 53 वर्ष थी। आयु के इस अंतर को लेकर लोगों के बीच बहुत-सी चर्चाएँ होती रही हैं। लोग तरह-तरह की व्याख्याएँ करते हैं, जिनका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं होता।

वास्तव में यह केवल एक विवाह का मामला नहीं था। हज़रत ख़दीजा के देहांत के बाद पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) के लिए एक नए सामाजिक सहारे और समर्थन का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा से विवाह के बाद, उनके पिता हज़रत अबू बक्र के साथ पारिवारिक संबंध स्थापित हुए, जिससे पैग़ंबर को एक नया और अत्यंत प्रभावशाली सामाजिक समर्थन प्राप्त हुआ। जैसा कि इतिहास से पता चलता है, हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ बचपन से ही पैग़ंबरे इस्लाम (सल्ल०) के सबसे भरोसेमंद और निकट साथियों में थे। उन्होंने हर कठिन समय में पैग़ंबर का साथ दिया। पैग़ंबर के देहांत के बाद जब मुस्लिम समुदाय गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा था, तब उन्होंने उसे एकजुट और स्थिर बनाए रखने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके नेतृत्व और सूझ-

बूझ के कारण प्रारंभिक मुस्लिम समाज बिखरने से बचा और स्थिरता के साथ आगे बढ़ता रहा।

प्रकृति के नियम के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को सफल जीवन के लिए एक सामाजिक आधार की आवश्यकता होती है। क़ुरआन के अनुसार यह सामाजिक आधार दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक रक्त-संबंध (blood relationship) और दूसरा निकाह का संबंध (marriage relationship)। प्रकृति के नियम के अनुसार यही दोनों चीज़ें मज़बूत सामाजिक आधार का माध्यम हैं। प्रत्येक मनुष्य इन्हीं दो संबंधों की सहायता से समाज में अपनी मज़बूत बुनियाद प्राप्त करता है। इस सामाजिक आधार की आवश्यकता हर व्यक्ति को होती है, यहाँ तक कि पैग़ंबर को भी। यह प्रकृति का नियम है और प्रकृति के नियम में कोई परिवर्तन संभव नहीं है।

इस संबंध में क़ुरआन की एक मार्गदर्शक आयत इस प्रकार है:"वही है जिसने पानी से मनुष्य को पैदा किया, फिर उसे वंश-संबंध और विवाह-संबंध वाला बनाया। और तुम्हारा पालनहार बड़ी शक्ति वाला है।" (25:54)

यदि ये दोनों प्राकृतिक आधार न हों, तो मनुष्य का जीवन भी जानवरों की तरह जंगल का जीवन बन जाए। यही प्राकृतिक संबंध दुनिया की ज़िंदगी में मनुष्य को सामाजिक आधार प्रदान करते हैं। इसी ओर क़ुरआन की एक आयत में रहत (परिवार) शब्द से संकेत किया गया है। वह आयत यह है:

> "उन्होंने कहा, 'ऐ शुऐब! तुम जो कहते हो उसका बहुत-सा भाग हमारी समझ में नहीं आता। हम तुम्हें अपने बीच कमज़ोर पाते हैं। यदि तुम्हारा परिवार न होता, तो हम तुम्हें पत्थर मारकर समाप्त कर देते, और हम तुम्हें कोई प्रभावशाली व्यक्ति नहीं समझते।'" (11:91)

क़ुरआन के इस संदर्भ से उपर्युक्त व्याख्या की पुष्टि होती है। मक्का के दौर में

रसूलुल्लाह (सल्ल०) को इस प्रकार का सहयोग लगातार मिलता रहा— पहले बनू हाशिम से, फिर हज़रत ख़दीजा के परिवार से और उसके बाद हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ के परिवार से। यह रसूलुल्लाह (सल्ल०) के लिए एक प्राकृतिक सहयोग था, जो रक्त-संबंध और वैवाहिक संबंधों के आधार पर प्राप्त हुआ। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा के साथ आपके निकाह को यदि इस संदर्भ में देखा जाए, तो वह अत्यंत अर्थपूर्ण दिखाई देता है। विशेष रूप से हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ का मामला अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे रसूलुल्लाह (सल्ल०) के जीवनकाल में आपके सबसे प्रमुख साथियों में रहे और आपके देहांत के बाद पहले ख़लीफ़ा के रूप में इस्लाम को स्थिरता प्रदान करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(*अल-रिसाला*, अप्रैल 2017)

निकाह की गहरी बुद्धिमत्ता

जैसा कि मालूम है, आयशा सिद्दीक़ा का निकाह पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) से उस समय हुआ, जब उनकी उम्र दस साल से कम थी। निकाह के बाद वह पूरे मदनी दौर में पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के साथ रहीं। यह मदनी दौर, जो दस साल पर आधारित है, इस्लाम के शुरुआती इतिहास की सबसे अधिक घटनाओं से भरा हुआ (eventful) दौर है। इस पूरे मदनी दौर में वह लगातार पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के साथ रहीं। यहाँ तक कि सफ़र में भी वह आपके साथ होती थीं। इस तरह यह दस साल का समय आयशा सिद्दीक़ा के लिए मानो एक जीवित मदरसे से जुड़े रहने का समय था।

हज़रत आयशा का पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) से कम उम्र में निकाह इसी

उद्देश्य से हुआ था। उस समय आयशा सिद्दीक़ा जीवन के उस चरण में थीं, जिसे व्यक्तित्व-निर्माण का दौर (Formative Period) कहा जाता है। मनोविज्ञान के अध्ययनों से पता चलता है कि लगभग दस वर्ष की आयु तक व्यक्ति के विचार, स्वभाव और मानसिक प्रवृत्तियाँ काफी हद तक आकार ले चुकी होती हैं। इस उम्र के बाद उनमें बुनियादी बदलाव लाना कुछ कठिन हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आयशा सिद्दीक़ा के पिता, हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़, इस वास्तविकता को समझते थे। इसी समझ के आधार पर उन्होंने एक सुविचारित निर्णय लेते हुए अपनी प्रतिभाशाली और बुद्धिमान पुत्री का निकाह कम उम्र में पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के साथ कर दिया।

यह कार्य पहले ख़लीफ़ा हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ की पूर्ण सहमति और प्रसन्नता के साथ संपन्न हुआ। इसमें एक ओर गहरा समर्पण और निष्कपट भावना थी, तो दूसरी ओर असाधारण दूरदर्शिता भी शामिल थी।

इस निकाह, या दूसरे शब्दों में कहें तो इस शैक्षिक व्यवस्था का जो परिणाम सामने आया, वह मानव इतिहास में संभवतः अपनी तरह का एक अनोखा उदाहरण है। इसके फलस्वरूप हज़रत आयशा सिद्दीक़ा जैसी एक विशिष्ट और योग्य व्यक्तित्व का निर्माण हुआ, जिन्हें अपने जीवन के ग्रहणशील (Receptive) दौर में एक पूर्ण पैग़म्बर की संगति में सीखने और विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार वे इल्मे नुबुव्वत की एक महत्वपूर्ण वारिस बन गईं।

इसके बाद पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की वफ़ात के पश्चात लगभग पचास वर्षों तक उन्होंने लोगों के बीच इल्मे नुबुव्वत का प्रसार किया। वह उस युग में, जब न प्रिंटिंग प्रेस था और न ही रिकॉर्डिंग के आधुनिक साधन, पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की शिक्षाओं और मार्गदर्शन को सुरक्षित रखने तथा आगे पहुँचाने का एक जीवंत माध्यम बन गईं।

नुबुव्वत के ज्ञान को पहुँचाने का यह सिलसिला हज़रत आयशा के माध्यम से पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के देहांत के बाद भी लंबे समय तक जारी रहा। यह केवल इसलिए संभव हुआ कि उनका निकाह कम उम्र में पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के साथ हो गया था। यदि ऐसा होता कि पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की जो उम्र थी, लगभग वही उम्र आयशा सिद्दीक़ा की भी होती, तो दोनों का देहांत कुछ अंतर के साथ लगभग एक ही समय में हो जाता। और इस तरह पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की आवाज़ बंद होते ही हज़रत आयशा की आवाज़ भी बंद हो जाती, और नबी के इल्म के प्रसार का सिलसिला भी अचानक रुक जाता।

यदि पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के साथ उनका यह निकट संबंध स्थापित न हुआ होता, तो आपकी वफ़ात के साथ ही इल्मे नुबुव्वत के प्रसार का एक महत्वपूर्ण माध्यम समाप्त हो जाता। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा ने जिस प्रकार आपकी शिक्षाओं, मार्गदर्शन और जीवन के विभिन्न पहलुओं को सुरक्षित रखा और आगे पहुँचाया, उसने इल्मे नुबुव्वत के सिलसिले को निरंतर जारी रखा।

यहाँ यह जोड़ना आवश्यक है कि पैग़म्बर से ज्ञान प्राप्त करने का यह मामला किसी पुरुष के साथ संभव नहीं था। इस उद्देश्य के लिए एक महिला की आवश्यकता थी, जो पत्नी के रूप में लगातार आपके साथ रहे। लगातार संगति का संबंध केवल अपनी पत्नी के साथ हो सकता था, किसी पुरुष के साथ नहीं। इन सभी बातों को सामने रखकर देखा जाए, तो आयशा सिद्दीक़ा का यह निकाह एक ऐसी दूरदर्शी योजना था, जिसका लाभ क़यामत तक पूरी मानवता को प्राप्त हुआ। इस विषय के विभिन्न पहलुओं को सामने रखकर और निष्पक्ष रूप से विचार किया जाए, तो यह समझना बिल्कुल कठिन नहीं कि जो हुआ, वही हो सकता था। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए कोई दूसरा विकल्प ही नहीं था।

दीन-ए-इस्लाम का मूल स्रोत क़ुरआन और हदीस हैं। क़ुरआन और हदीस को इस्लाम का मूल पाठ (Text) कहा जा सकता है। यह मूल पाठ मानो दीन-ए-

इस्लाम का शब्दों में बयान है। जो व्यक्ति यह जानना चाहता है कि इस्लाम क्या है, वह क़ुरआन और हदीस का अध्ययन करके इसे समझ सकता है।

लेकिन एक और चीज़ है, जिसकी दीन में बहुत अधिक अहमियत है, और वह है सोहबत (संगति)। सोहबत का अर्थ केवल किसी सभा में चुपचाप बैठना नहीं है, बल्कि उसमें बौद्धिक विचार-विमर्श (intellectual exchange) अनिवार्य रूप से शामिल होता है। वास्तविक अर्थों में सोहबत पाने वाला वही है, जो सभा में इस तरह शामिल हो कि वह सभा के प्रमुख से नियमित रूप से लाभ प्राप्त कर रहा हो। वह प्रश्न और उत्तर के माध्यम से अपने ज्ञान को बढ़ा रहा हो। वह जो बातें स्पष्ट न हों, उन्हें आगे की बातचीत के द्वारा स्पष्ट कर रहा हो। साथ ही, वह सभा के प्रमुख के अनुभव, उनकी आध्यात्मिकता और उनकी बढ़ी हुई अल्लाह की पहचान (*मारिफ़ते इलाही*) से व्यक्तिगत लाभ भी प्राप्त कर रहा हो।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) के साथी आपकी सोहबत की जीवंत मिसाल थे। लेकिन हज़रत आयशा सिद्दीक़ा के रूप में सोहबत का एक विशेष और उत्कृष्ट उदाहरण सामने आया। उनका जीवन सोहबत के लाभों का पूर्ण नमूना था। साथ ही, यह ऐसा आदर्श बन गया जिसने पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की वफ़ात के बाद भी लंबे समय तक लोगों को सोहबत की अहमियत और उसके लाभों से परिचित कराया।

आयशा सिद्दीक़ा मानो सोहबत की जीवित व्याख्या हैं। उनकी ज़िंदगी में सोहबत का सिद्धांत मानो एक संस्था (institution) का रूप ले चुका था। अब इस संस्था को उम्मत के भीतर स्थायी रूप से जीवित रखना है। हर पीढ़ी के वरिष्ठ लोगों को चाहिए कि वे अगली पीढ़ी के पुरुषों और महिलाओं तक सोहबत का यह लाभ पहुँचाते रहें, ताकि दीन-ए-इस्लाम केवल मूल पाठ (टेक्स्ट) के रूप में ही सुरक्षित न रहे, बल्कि सोहबत की संस्था के रूप में उसका बौद्धिक और आध्यात्मिक लाभ भी हमेशा जारी रहे।

(*औरत: मेमारे इंसानियत*)

सूरह नूर की रोशनी में

ग़ज़वा बनी मुस्तलिक 6 हिजरी में हुआ। रसूलुल्लाह (सल्ल०) इस ग़ज़वे से मदीना वापस आ रहे थे। आपकी पत्नी हज़रत आयशा (रज़ि०) भी साथ थीं। उनकी सवारी का ऊँट अलग था। एक जगह काफ़िला रुका। रात को कूच से पहले हज़रत आयशा शौच के लिए जंगल की तरफ़ चली गईं। वहाँ उनका हार टूटकर गिर गया, जिसे तलाश करने में देर लग गई। उधर कूच का समय हो गया। लोगों ने समझा कि हज़रत आयशा अपने हौदज (ऊँट पर रखी जाने वाली पालकी) में हैं। इसलिए सब ऊँटों के साथ उनका ऊँट भी हाँक दिया गया। हज़रत आयशा वापस आईं तो वहाँ कोई नहीं था। उन्होंने यह राय बनाई कि मुझे यहीं ठहरना चाहिए। आगे जाकर जब मैं नहीं मिलूँगी तो लोग तलाश करते हुए यहीं आएँगे। इसके बाद उन्हें नींद आ गई और वे वहीं सो गईं।

सफ़वान बिन मुअत्तल (रज़ि०) काफ़िले की ख़बर-गीरी के लिए पीछे रहा करते थे। वे सुबह उस जगह पहुँचे तो देखा कि कोई सो रहा है। पास आकर पहचान लिया तो घबराहट में उनकी ज़बान से निकला: इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन। यह सुनकर हज़रत आयशा की आँख खुल गई। उन्होंने चादर से अपना चेहरा ढाँक लिया। हज़रत सफ़वान ने ख़ामोशी से अपना ऊँट उनके पास लाकर बिठा दिया। हज़रत आयशा भी ख़ामोशी के साथ उस पर सवार हो गईं। अब हज़रत सफ़वान ऊँट की नकेल पकड़कर तेज़ी से चलने लगे, यहाँ तक कि दोपहर के समय काफ़िले में शामिल हो गए।

जब यह खबर मदीना पहुंची तो कुछ बुरी नीयत रखने वाले लोगों को अवसर मिल गया कि वे रसूलुल्लाह (सल्ल०) की पत्नी पर झूठा आरोप लगाकर आपकी दीनी तहरीक (religious movement) को बदनाम करें। यहाँ तक कि कुछ सरल और भले मुसलमान भी इस अफ़वाह का शिकार हो गए, जिनमें हज़रत हस्सान बिन साबित, हज़रत मिस्तह बिन उसासा और हज़रत हम्ना बिन्त जहश शामिल थे। यह चर्चा एक महीने से अधिक समय तक चलती

रही। अंततः क़ुरआन में इसके बारे में आयतें नाज़िल हुईं, जिनमें इस झूठे आरोप का खंडन किया गया और इस संबंध में स्पष्ट निर्देश दिए गए। उनमें से कुछ आयतें निम्नलिखित हैं—

> “जो लोग पाक-दामन औरतों पर इल्ज़ाम लगाएँ, फिर अपने इल्ज़ाम के सबूत में चार गवाह न लाएँ, तो उन्हें अस्सी (80) कोड़े मारो और उनकी गवाही कभी क़बूल न करो। यही लोग असली नाफ़रमान हैं। मगर जो लोग इसके बाद तौबा और सुधार कर लें, तो अल्लाह बड़ा माफ़ करने वाला, बहुत मेहरबान है। (24:4-5)

जो लोग यह तूफ़ान लाए हैं, वे तुम्हीं में से एक गिरोह हैं। तुम इसे अपने लिए बुरा न समझो, बल्कि यह तुम्हारे लिए बेहतर है। उनमें से हर एक ने जो गुनाह कमाया, वह उसी के लिए है, और जिसने उसका सबसे बड़ा बोझ उठाया, उसके लिए बड़ा अज़ाब है। ऐसा क्यों न हुआ कि जब तुमने यह बात सुनी तो मुसलमान मर्द और मुसलमान औरतें एक-दूसरे के बारे में अच्छा गुमान करते और कह देते कि यह खुला हुआ झूठा आरोप है। वे अपने इल्ज़ाम को साबित करने के लिए चार गवाह क्यों न लाए? फिर जब वे गवाह न ला सके, तो अल्लाह के नज़दीक वही झूठे हैं। जब तुम अपनी ज़बानों से वह बात एक-दूसरे तक पहुँचा रहे थे और अपने मुँह से वह बात कह रहे थे, जिसके बारे में तुम्हें कोई ज्ञान नहीं था, और तुम उसे मामूली बात समझ रहे थे, जबकि अल्लाह के नज़दीक वह बहुत बड़ी बात है। ऐसा क्यों न हुआ कि इसे सुनते ही तुमने कह दिया कि हमें क्या अधिकार है कि हम ऐसी बात अपनी ज़बान पर लाएँ। अल्लाह पाक है, यह बहुत बड़ा झूठा आरोप है। जो लोग चाहते हैं कि मुसलमानों में अश्लीलता का चर्चा हो, उनके लिए दुनिया में भी दर्दनाक अज़ाब है और आख़िरत में भी। अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते।” (24:11-19)

एक मुसलमान के लिए दूसरे मुसलमान की इज़्ज़त पर हमला करना हराम है। और जब मामला मुसलमान औरत का हो, तो उसकी गंभीरता और भी बढ़ जाती है। तबरानी की एक रिवायत में है कि पाक-दामन मुस्लिम ख़ातून पर बहुतान लगाना सौ साल के अमल को नष्ट कर देता है: (*अल-मोजम अल-कबीर,* अत-तबरानी, हदीस संख्या 3023)

बुख़ारी और मुस्लिम की एक रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया: "सात नष्ट कर देने वाली चीज़ों से बचो।" लोगों ने पूछा: "ऐ अल्लाह के रसूल! वे क्या हैं?" आपने फ़रमाया: "अल्लाह के साथ शिर्क करना, जादू करना, अल्लाह की हराम की हुई जान को नाहक़ क़त्ल करना, सूद खाना, यतीम का माल खाना, मैदान-ए-जिहाद से भागना, और भोली-भाली पाक-दामन ईमान वाली औरतों पर झूठा आरोप लगाना।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 2766; *सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 89)

इस सिलसिले में यहाँ कुछ बातों की ओर इशारा किया जाता है:

1. एक साधारण घटना को आधार बनाकर जिन लोगों ने यह अभियान चलाया, उनका वास्तविक उद्देश्य केवल रसूलुल्लाह या आपकी पत्नी को बदनाम करना नहीं था, बल्कि रसुलुल्लाह के द्वारा लाई गई शिक्षा और संदेश की छवि को नुक़सान पहुँचाना था। वे रसूलुल्लाह के चरित्र पर सवाल उठाकर उनके संदेश को संदेह के घेरे में लाना चाहते थे। इतिहास गवाह है कि हर दौर में सत्य के विरोधियों ने इसी प्रकार की रणनीति अपनाई है। लेकिन ऐसी कोशिशें, चाहे कितनी भी व्यापक क्यों न हों, अंततः सफल नहीं होतीं। इसका कारण यह है कि सच्चाई की पुकार जब भी उठती है, वह अल्लाह की विशेष सहायता और संरक्षण के साथ उठती है। उसे शक के घेरे में लाने की कोशिश करना वास्तव में अल्लाह की योजना के सामने खड़े होने जैसा है। और कौन ऐसा है जो अल्लाह की योजना का मुक़ाबला करके सफल हो यह निश्चित है कि

सत्य की शिक्षा बनी रहेगी और आगे बढ़ती रहेगी, यहाँ तक कि वह सत्य और असत्य का अंतर पूरी तरह स्पष्ट कर दे।

2. परीक्षा की इस दुनिया में किसी निर्दोष और बेगुनाह व्यक्ति के साथ कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई घटना घटे, जिसका ग़लत अर्थ निकाल लिया जाए। इस तरह अल्लाह से न डरने वाले लोगों को अवसर मिल जाता है कि वे उसके माध्यम से उसे बदनाम कर सकें। लेकिन जो लोग अल्लाह से डरते हैं, उन्हें ऐसे अवसरों पर हमेशा अच्छी सोच रखनी चाहिए। उन्हें किसी बात को केवल सुनकर, बिना जाँच-पड़ताल किए सही नहीं मान लेना चाहिए और न ही उसे आगे फैलाना चाहिए।

3. किसी भी आरोप को सही मानने के लिए आवश्यक है कि उसके समर्थन में चार विश्वसनीय व्यक्ति गवाही दें। यदि आरोप लगाने वाला चार गवाह प्रस्तुत न कर सके, तो यह माना जाएगा कि वह झूठा है, और इस अपराध में उसे 80 कोड़े लगाए जाएँगे। इसके बाद यदि वह अपनी ग़लती स्वीकार कर ले और अपना सुधार कर ले, तो आशा है कि अल्लाह उसे माफ़ कर देगा। लेकिन मुसलमानों के मामलों में गवाह बनने के लिए वह फिर भी अयोग्य रहेगा। उसके बाद उसकी गवाही कभी स्वीकार नहीं की जाएगी।

4. किसी पाक-दामन महिला पर झूठा आरोप लगाना इतना गंभीर अपराध है कि उसकी कठोरतम सज़ा केवल आख़िरत में ही नहीं, बल्कि दुनिया में भी मिलकर रहती है। किसी की इज़्ज़त पर हमला करना नीचता की बात है, और जिस अपराध में नीचता शामिल हो, वह इंसान को अल्लाह की दया से अंतिम सीमा तक वंचित कर देता है। ऐसे व्यक्ति के लिए जहन्नम इतनी निकट आ जाती है कि वह दुनिया में ही उसकी आँच महसूस करने लगता है। वास्तविकता यह है कि दूसरे पर हमला करना सबसे पहले अपने ऊपर हमला करना है।

5. इस्लामी माहौल अल्लाह के प्रति समर्पण का माहौल होता है। । इस्लामी समाज वह है जहाँ हर व्यक्ति यह सोचकर बोलता है कि उसे अपने हर शब्द का जवाब अल्लाह के सामने देना है। ऐसे माहौल में इंसान को बहुत सावधानी के साथ रहना चाहिए। जो लोग गैर-जिम्मेदाराना बातें फैलाते हैं, वे दरअसल इस्लामी समाज की अल्लाह-परस्ती (ईश्वर-भक्ति) वाली फ़िज़ा को प्रभावित करते हैं। वे मुसलमानों के सामूहिक जीवन में नकारात्मकता और अशांति पैदा करते हैं। ऐसे लोग अल्लाह के नज़दीक गंभीर अपराध के दोषी हैं। यदि वे दुनिया में अपने बचाव के लिए कोई तर्क ढूँढ़ लें, तो उन्हें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि अल्लाह के सामने भी वे अपने बचाव में सफल हो जाएँगे। आख़िरत वह जगह है जहाँ हर सच्चाई पूरी तरह सामने आ जाएगी। वहाँ वही व्यक्ति सफल और निर्दोष माना जाएगा जिसने सच्चाई के अनुसार जीवन बिताया होगा। लेकिन जो व्यक्ति सच्चाई से हटकर चला होगा, उसके लिए आख़िरत में कोई सहारा या स्थान नहीं होगा।

6. इस प्रकार की किसी घटना का होना देखने में भले ही अप्रिय लगे, लेकिन उसके भीतर भलाई का एक पक्ष भी छिपा होता है। ऐसी घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि कौन ज़िम्मेदार है और कौन ग़ैर-ज़िम्मेदार। कौन अपने दिल में अपने भाइयों के लिए भलाई रखता है, और किसके दिल में दूसरों के लिए ईर्ष्या और द्वेष भरा हुआ है। कौन अल्लाह के सामने जवाबदेही की भावना के साथ बोलता है, और कौन बिना किसी जवाबदेही की भावना के बोलता है। इस प्रकार एक ओर ऐसे लोगों की वास्तविकता सामने आ जाती है जिनके मन में बुराई छिपी होती है, और दूसरी ओर सत्य के मार्ग पर चलने वालों को अवसर मिलता है कि वे अल्लाह द्वारा दिए गए सामर्थ्य से सब्र का रास्ता अपनाएँ और अल्लाह की और अधिक कृपा के हक़दार बनें।

7. इस घटना से यह भी पता चलता है कि जब सत्य का संदेश पूरी ईमानदारी

के साथ पेश किया जाता है, तो जिन लोगों के हित उससे प्रभावित होते हैं, वे उसके सबसे बड़े विरोधी बन जाते हैं। इन विरोधियों में एक वर्ग सामान्य दुनियादार लोगों का होता है। वे भी ऐसे मिशन का विरोध करते हैं, लेकिन उनका विरोध एक सीमा तक ही रहता है। वे सत्य के संदेशवाहक को असफल बनाने की कोशिश करते हैं, लेकिन उसका अपमान करने की कोशिश नहीं करते। ग़ज़वा-ए-उहुद की घटनाओं में आता है कि मक्का वालों का जो लश्कर मदीना पर चढ़ाई करने के लिए निकला था, वह रास्ते में अबवा नामक स्थान पर पहुँचा, जहाँ पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की माँ आमिना बिन्त वहब की क़ब्र थी। क़ुरैश के कुछ उग्र लोगों ने चाहा कि क़ब्र को खोदकर पैग़ंबर की माँ का अपमान करें, लेकिन स्वयं क़ुरैश के लोगों ने उन्हें डाँटा और इस इरादे से रोक दिया। (*अख़बार मक्का,* अल-अज़रक़ी, खण्ड 2, पृष्ठ 272)

वे पैग़ंबर से युद्ध के लिए निकले थे, लेकिन उन्हें अपमानित करने के लिए घटिया तरीक़ा अपनाना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। परन्तु यहूदियों का मामला इससे अलग था। वे अपने आपको सत्य का एकमात्र प्रतिनिधि समझते थे। उन्होंने छोटी-छोटी बातों को बहाना बनाकर आप पर अत्यंत घटिया आरोप लगाए और आपकी नैतिक प्रतिष्ठा को गिराने की कोशिश की। इस झूठे आरोप के वास्तविक ज़िम्मेदार वही लोग थे।

जो लोग अपने आपको सत्य का एकमात्र प्रतिनिधि मानते हैं, जब उन्हें लगता है कि उनकी स्थिति या प्रभाव पर असर पड़ रहा है, तो उनकी प्रतिक्रिया बहुत तीव्र हो जाती है। वे केवल ऐसे आह्वान को रोकने की कोशिश नहीं करते, बल्कि आह्वानकर्ता को बदनाम करने का अभियान भी चलाते हैं। अपने धार्मिक नेतृत्व और प्रभाव को बचाने के लिए वे हर तरह के अनुचित और निम्न स्तर के काम को भी सही समझने लगते हैं।

(*अल-रिसाला*, मई 1980)

धर्म के नाम पर अधर्म

रसूलुल्लाह के मदीना काल में एक बार एक असामान्य घटना हुई। यह घटना हज़रत आयशा सिद्दीक़ा से संबंधित थी। कुछ लोगों ने इस घटना का ग़लत और मनगढ़ंत अर्थ निकालकर एक झूठी कहानी बना ली। यह बेबुनियाद कहानी थोड़े ही समय में पूरे मदीना में फैल गई।

अपने विचार में वे सत्य का प्रचार कर रहे थे, लेकिन वास्तव में वे असत्य को फैलाने का काम कर रहे थे। परिणामस्वरूप वह स्थिति पैदा हो गई, जिसका उल्लेख क़ुरआन (अन-नूर, 24:15) में इस प्रकार किया गया है—"जब तुम उस झूठ को अपनी ज़बानों से एक-दूसरे तक पहुँचा रहे थे।" (अनुवाद: मौलाना अशरफ़ अली थानवी)।

यह पूरा विवाद तब समाप्त हुआ, जब सूरह नूर की संबंधित आयतें नाज़िल हुईं और अल्लाह की ओर से आई हुई वह्य ने सीधे तौर पर इस झूठे आरोप का खंडन कर दिया।

इस सिलसिले में सूरह नूर में मुसलमानों को कुछ निर्देश दिए गए, ताकि वे भविष्य में इस प्रकार की अपराधपूर्ण गलती को दोबारा न करें। उनमें से एक विशेष निर्देश यह था—"ऐसा क्यों न हुआ कि जब तुमने यह बात सुनी, तो मुसलमान मर्द और मुसलमान औरतें एक-दूसरे के बारे में अच्छा गुमान करते और कह देते कि यह तो खुला हुआ झूठा आरोप है।" (अन-नूर, 24:12)

इस आयत की व्याख्या करते हुए इब्न कसीर ने लिखा है कि लोगों को चाहिए था कि वे इस मामले को अपने ऊपर लागू करके सोचते। यदि वे अपने बारे में ऐसी बात को स्वीकार नहीं कर सकते थे, तो उम्मुल-मोमिनीन हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा तो उससे कहीं अधिक ऐसी बातों से पाक थीं। (*तफ़सीर इब्न कसीर*, खण्ड 3, पृष्ठ 273)

जब किसी मुसलमान को दूसरे मुसलमान के बारे में कोई बदगुमानी पैदा हो, तो पहले ही चरण में यह सोचकर उसे अस्वीकार कर देना चाहिए कि क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ? और जब उसकी अंतरात्मा यह कहे कि मैं ऐसा नहीं कर सकता, तो इसी आधार पर उसे समझ लेना चाहिए कि दूसरे मुसलमान ने भी निश्चित रूप से ऐसा नहीं किया होगा।

वास्तव में ऐसे मौकों पर ही यह स्पष्ट होता है कि सच्चा ईमान रखने वाला कौन है और केवल ईमान का दावा करने वाला कौन है। किसी व्यक्ति के दीन पर दृढ़ होने का प्रमाण यह नहीं है कि वह अच्छाई और सुधार की बातें करता हो। उसका असली प्रमाण यह है कि वह अपने व्यवहार में हुस्न-ए-ज़न्न (दूसरों के बारे में अच्छा विचार रखने) के क़ुरआनी सिद्धांत का पालन करे। अच्छाई और सुधार के नारे लगाना तो केवल नेतृत्व का दावा हो सकता है, लेकिन हुस्न-ए-ज़न्न के सिद्धांत पर स्वयं अमल करना ही वास्तविक अर्थ में अल्लाह के दीन का पालन करना है।

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा का यह प्रसंग तज़कीरुल-क़ुरआन या तफ़सीर की अन्य पुस्तकों में सूरह नूर की तफ़सीर के अंतर्गत देखा जा सकता है। यहाँ उसकी विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि हज़रत आयशा प्रसिद्ध रूप से मदीना की एक सम्मानित महिला थीं। उनका पूरा जीवन इस्लाम की सेवा में बीता था। मदीना के कुछ लोगों ने आपकी एक घटना को लेकर उसे चर्चा का विषय बना लिया और उसे आपको बदनाम करने के लिए इस्तेमाल किया। लेकिन इन्हीं लोगों ने कभी यह नहीं किया कि वे हज़रत आयशा की महान दीनी सेवाओं का उल्लेख करें। उनकी सभाएँ हज़रत आयशा के उल्लेख से इस प्रकार खाली रहती थीं, मानो मदीना में न कोई आयशा हैं और न उनकी कोई दीनी सेवाएँ।

लेकिन जैसे ही उन्हें हज़रत आयशा के बारे में ऐसी बात मिली, जिसका मनगढ़ंत अर्थ निकालकर वे उसे आपके विरुद्ध इस्तेमाल कर सकते थे, तो

बिजली की गति से उनका पूरा समूह सक्रिय हो गया। उन्होंने अपने सभी साधनों का उपयोग करके यह झूठी कहानी फैला दी। उन्होंने एक-एक व्यक्ति के कान में यह बात पहुँचाकर उसे हज़रत आयशा के प्रति बदगुमान करने की कोशिश की। यहाँ तक कि पूरे मदीना को उनके विरुद्ध बदगुमानियों और अफ़वाहों से भर दिया गया। अपने विचार में ये लोग एक "घटना" का प्रचार कर रहे थे, लेकिन अल्लाह के निकट वे सबसे बड़े अपराधी थे। ऐसा करके वे अल्लाह के दीन की कोई सेवा नहीं कर रहे थे, बल्कि केवल शैतान के उद्देश्य को पूरा कर रहे थे।

जो व्यक्ति अल्लाह की पकड़ से डरता हो, उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह अपनी राय तथ्यों के आधार पर बनाए, न कि अफ़वाहों और चर्चाओं के आधार पर। यदि कभी कोई ग़लतफ़हमी हो जाए, तो संबंधित व्यक्ति से मिलकर अपनी ग़लतफ़हमी दूर की जाए, न कि उसे सत्य मानकर उसका सार्वजनिक प्रचार किया जाए।

इसी प्रकार के चरित्र को पाखंडी चरित्र कहा जाता है। क़ुरआन के अनुसार, पाखंडी चरित्र वाले लोगों के लिए इनकार करने वालों से भी अधिक कठोर सज़ा निर्धारित है, सिवाय इसके कि वे तौबा करें, खुले रूप से अपनी अपराधपूर्ण नीति को स्वीकार करें और संबंधित व्यक्तियों से माफ़ी माँग लें।

(*अल-रिसाला*, फ़रवरी 1999)

एक आदर्श नमूना

इस्लामी शिक्षाओं के लिए एक आदर्श नमूना आयशा बिन्त अबू बक्र सिद्दीक़ का है। वे पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की पत्नी थीं। वे पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के देहांत के बाद लगभग पचास साल तक ज़िंदा रहीं, और पैग़म्बरे इस्लाम के बाद लंबी अवधि तक लोगों को इस्लाम की गहरी समझ-भरा संदेश पहुँचाती

रहीं। वे रिकॉर्डिंग के ज़माने से पहले पैग़म्बरे इस्लाम की ज़िंदा रिकॉर्डिंग बनी रहीं। उनकी इस्लामी मारिफ़त इतनी बढ़ी हुई थी कि असहाब-ए-रसूल उनसे इल्म-ए-दीन सीखने के लिए दूर-दूर से आते थे।

हज़रत आयशा की ज़िंदगी तमाम महिलाओं के लिए एक उच्च नमूने की हैसियत रखती है। हज़रत आयशा ने अत्यंत सादा जीवन अपनाया। आर्थिक और भौतिक मामलों में उन्होंने आख़िरी हद तक संतोष का रास्ता अपनाया। इस तरह उन्हें यह अवसर मिला कि वे पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) की संगति से पूरा लाभ उठा सकें।

हज़रत आयशा ने अपना जीवन पैग़म्बरे इस्लाम से दीन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए समर्पित कर दिया। इसी कारण उनको यह अवसर मिला कि वे पैग़म्बरे इस्लाम के निधन के बाद लंबे समय तक लोगों के लिए दीन की शिक्षिका और मार्गदर्शक बनी रहीं।

यही अवसर सभी महिलाओं के लिए खुला है। यदि वे सादा जीवन अपनाएँ और दीन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वयं को समर्पित कर दें, तो उन्हें भी अल्लाह की सहायता मिलेगी। इस प्रकार वे भी लोगों के लिए रहमत और भलाई का माध्यम बन सकती हैं, जिस तरह हज़रत आयशा अपने समय में बनी थीं।

(*अल-रिसाला*, फ़रवरी 2008)

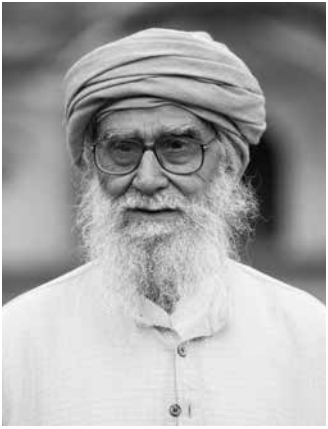

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ (1925–2021) एक इस्लामी विद्वान, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और शांति दूत थे। उन्होंने 200 से अधिक पुस्तकों की रचना की और हज़ारों व्याख्यान रिकॉर्ड किए, जिनमें आधुनिक शैली और तर्कसंगत भाषा में इस्लाम की व्याख्या प्रस्तुत की गई। उनका अंग्रेज़ी अनुवाद *The Quran* अपनी सरलता, स्पष्टता और समकालीन शैली के कारण व्यापक रूप से सराहा गया है।

उन्होंने वर्ष 2001 में सेंटर फ़ॉर पीस एंड स्पिरिचुएलिटी (CPS International) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य लोगों की सोच को ईश्वर-केंद्रित जीवन की ओर मोड़ना और इस्लाम को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत करना था, जो शांति, आध्यात्मिकता और सह-अस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित है।

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान ने 21 अप्रैल 2021 को नई दिल्ली, भारत में इस संसार से विदा ली। किंतु उनकी बौद्धिक और आध्यात्मिक विरासत CPS International के माध्यम से आज भी आगे बढ़ रही है।

www.quran.me www.goodwordquran.com
www.mwkhan.com www.cpsglobal.org

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा इस्लामी इतिहास की एक महान विदुषी थीं। उन्हें पैग़म्बर मुहम्मद के साथ रहकर इस्लाम की शिक्षाओं को बहुत निकट से समझने का अवसर मिला। वे उनकी बातों को ध्यान से सुनतीं, प्रश्न करतीं और उनके गहरे अर्थों पर विचार करतीं।

पैग़म्बर मुहम्मद के बाद अनेक लोग धार्मिक विषयों में उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। उन्होंने कई गलतफहमियों को दूर किया और इस्लाम की मूल भावना को स्पष्ट किया। उनका जीवन ज्ञान, सादगी, उदारता और अल्लाह के प्रति समर्पण का प्रेरणादायक उदाहरण है।

यह पुस्तक उनके जीवन, व्यक्तित्व, ज्ञान और योगदान का सरल परिचय प्रस्तुत करती है। साथ ही यह बताती है कि सही मार्गदर्शन, निरंतर सीखने की भावना और खुले मन से विचार करने वाला व्यक्ति—चाहे वह महिला हो या पुरुष—अपने ज्ञान और आचरण से पूरे समाज के लिए प्रेरणा और मार्गदर्शन का माध्यम बन सकता है।

Goodword Books
CPS International

ISBN 978-93-49952-28-7

9 789349 952287